आलोचना व निबन्ध

जायसी साहित्य और सिद्धान्त

लेखक की अन्य रचनाएँ

प्रबन्ध-सागर (साहित्यिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक इत्यादि विषयों पर उच्च कोटि के सैकड़ों निबन्धों का ५५० पृष्ठों का अपूर्व ग्रन्थ। हिन्दी-साहित्य में सर्वप्रथम कम्पोज़ीशन (Composition)-पुस्तक। दो वर्ष में **तृतीय संस्करण**) ५॥)

आदर्श पत्र-लेखन (व्यक्तिगत, व्यावहारिक, निजी तथा व्यापारिक पत्रों का भावनात्मक, कथात्मक तथा विचारात्मक शैली में संग्रह। इसमें जीवन की हर परिस्थिति पर आवश्यक पत्र का नमूना दिया गया है।) पृष्ठ ५६८। मूल्य ७॥)

आदर्श भाषण-कला (हिन्दी-साहित्य में भाषण सम्बन्धी प्रथम ग्रन्थ। वार्तालाप, भाषण तथा डिबेट सम्बन्धी अनेक विषयों की पक्ष-विपक्ष की पूरी जानकारी। विद्यार्थियों तथा संसदीय सदस्यों के लिए लाभदायक न्थ) पृष्ठ ४३२। मूल्य ७॥)

च नात्मक ग्रन्थमाला

सूर-साहित्य और सिद्धान्त (महाकवि सूर के जीवन, साहित्य, सिद्धान्त और भाषा इत्यादि का संक्षिप्त परन्तु पूर्ण आलोचनात्मक विवेचन) मूल्य २॥)

कबीर-साहित्य और सिद्धान्त (कबीर के जीवन, साहित्य, सिद्धान्त और भाषा इत्यादि का संक्षिप्त परन्तु सम्पूर्ण, सारगर्भित आलोचनात्मक विवेचन) मूल्य २॥)

लेखक की आगामी आलोचनात्मक कृतियाँ

प्रेमचन्द और उनका साहित्य	२॥)
तुलसी-साहित्य और सिद्धान्त	२॥)
चंद और उनका काव्य	२॥)
बिहारी और उनका काव्य	२॥)
प्रसाद और उनका साहित्य	२॥)
छायावादी काव्य और उनका साहित्य	२॥)
वीररस के कवि और उनका साहित्य	२॥)
रीतिकालीन कवि और उनका साहित्य	२॥)
भक्तिकालीन कवि और उनका साहित्य	२॥)
राष्ट्रवादी कवि और उनका साहित्य	२॥)
गुप्त जी और उनकी काव्यधाराएँ	२॥)
भारतेन्दु युग की काव्यधारा	२॥)
हिन्दी गद्य-निर्माता	२॥)

आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

पृष्ठ

अध्याय ३

जायस की रचनाएँ और उनकी भाषा २४-४७

पद्मावत २४
पद्मावत की कथा २६
अखरावट ४२
आखिरी कलाम ४२
जायसी की भाषा ४४
क्रिया के रूप ४४
सारनिरूपण ४७

अध्याय ४

जायसी की रचनाओं में साहित्यिक अभिव्यक्ति ४८-६८

बुद्धि-तत्त्व ४६
भावना-तत्त्व ४९
कल्पना-तत्त्व ५३
प्रबन्धात्मकता ५४
सम्बन्ध-निर्वाह ५६
वर्णन-शैली ५७
अलंकारों का प्रयोग ६०
चरित्र चित्रण ६३
सार निरूपण ६७
संक्षिप्त ६८

अध्याय ५

जायसी का आध्यात्मिक तत्व-निरूपण ६९-८०

कुछ उल्लेखनीय मान्यताएँ ७०
सार निरूपण ८०

अध्याय ६

जायसी का रहस्यवाद ८१-८७

... ... ८७

	पृष्ठ
संक्षिप्त	८७
अध्याय ७	
जायसी की धार्मिक और सामाजिक विचारधारा	८८
सार-निरूपण	९२
संक्षिप्त	९२
अध्याय ८	
जायसी की जानकारी	९३
सार-निरूपण	९८
संक्षिप्त	९९
अध्याय ९	
जायसी का मूल्यांकन	१००-१०६
धार्मिक प्रवक्ता के नाते	१००
मानवतावादी भावनात्मक व्यक्ति के नाते	१०१
विचारक के नाते	१०२
एक साहित्यिक के नाते	१०३
सार-निरूपण	१०५
संक्षिप्त	१०६
अध्याय १०	
प्रेम साहित्य की परम्परा	१०७-११९
सार-निरूपण	११९
संक्षिप्त	११९

जायसी साहित्य और सिद्धान्त

जायसी का, उसके जीवन, समकालीन परिस्थितियों, रचनाओं और
उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति, भाषा, आध्यात्मिक
तत्व-निरूपण तथा मान्यताओं, और
परम्पराओं के आधार पर मूल्यांकन

लेखक
यज्ञदत्त शर्मा

१९५५
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली–६

विषय-सूची

अध्याय १ पृष्ठ

जायसी की जीवनी १-१५

महाकवि जायसी का जन्म १
जायसी का जन्मस्थान ३
जायसी का नाम और वंश ४
जायसी का परिवार ५
महाकवि जायसी का बचपन और विवाह ६
महाकवि जायसी के मित्र ६
महाकवि जायसी के गुरु ७
महाकवि जायसी का सत्संग ६
महाकवि जायसी सिद्ध फ़कीर के रूप में १०
बहिर्साक्ष्य १०
जायसी के जीवन की अन्य घटनाएँ १२
जायसी की मृत्यु १२
जायसी का व्यक्तित्व १३
सार-निरूपण १४
संक्षिप्त १५

अध्याय २

प्रेम मार्गीय विचारधारा तथा समकालीन परिस्थितियाँ १६-२२

चारों सम्प्रदायों की एकता १७
जनता पर प्रभाव १८
चार सम्प्रदाय १८
प्रसार २०
देश की राजनैतिक स्थिति २१
जनता पर प्रभाव २१
संक्षिप्त २२

जायसी-साहित्य और सिद्धान्त

अध्याय १

जायसी की जीवनी

खेद का विषय है कि साधारण कवियों की तो बात क्या हिन्दी साहित्य के महाकवियों के जीवन वृत्तों के विषय में भी अभी तक हमारी जानकारी पूर्ण नहीं हो सकी। इसका प्रधान कारण यही है कि न तो इन महाकवियों ने ही कभी इस बात की आवश्यकता महसूस की और न किसी अन्य समकालीन लेखक ने ही उसका सही लेखा जोखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया। जो सामग्री मिलती भी है वह भी अनेकों कारणों से संदिग्ध ही ठहरती है। विशेष रूप से भक्त कवियों के विषय में उनके शिष्यों की जो सूचनाएँ मिलती हैं वे आज जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने में सर्वथा अपूर्ण हैं। महाकवि जायसी के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालने के लिए हम दो प्रकार की उपलब्ध सामग्री का प्रयोग करेंगे।

१. अंतर्साक्ष्य।

२. बहिर्साक्ष्य।

इनके अतिरिक्त कुछ किवदंतियों के भी आधार उपलब्ध हैं परन्तु वे अधिकांश में अनविश्वसनीय ही ठहरते हैं।

जायसी का जन्म

मलिक मोहम्मद जायसी की एक फ़ारसी लिपि की पुस्तक 'आखिरी कलाम' मिलती है। यह पुस्तक बाबर के समय में (सन् १५२८ ई० के लगभग) लिखी गई थी। कवि ने इस पुस्तक में अपने जन्म की ओर संकेत किया है।

भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।

जायसी पृष्ठ ३८४

इस पंक्ति का 'नव सदी' ही यदि शुद्ध पाठ माना जाय तो जायसी का जन्म

काल ६०० हिजरी (सन् १६४२ के लगभग) के लगभग निश्चित् होता है। उक्त पंक्ति के दूसरे भाग का अर्थ यह निश्चित् होता है कि तीस वर्ष की आयु में जायसी ने सुन्दर कविता करनी प्रारम्भ करदी थी।

जायसी ने अपने जन्म के समय की स्थिति का वर्णन भी किया है। वह लिखते हैं कि उसी समय एक बहुत बड़ा भूकम्प आया तथा साथ ही भारी सूर्य-ग्रहण भी पड़ा था।

आवत उधत-चार बिधि ठाना।
भा भूकम्प जगत अकुलाना॥
धरती दीह्न चक्र-बिधि भाई।
फिरै अकास रहँट कै नाई॥
गिरि-पहार मेदिनि तस हाला।
जस चाला चलनी भरि चाला॥
मिरित-लोक ज्यों रचा हिंडोला।
सरग पताल पवन खट डोला।
गिरि पहार परबत ढहि गए।
सात समुद्र कीच मिलि भए॥
धरती फाटि, छात भहरानी।
पुनि भई मया जौ सृष्टि दिठानी॥
—जायसी ग्रं० पृष्ठ ३८४।

भूकम्प के साथ-ही-साथ सूर्य-ग्रहण का भी वर्णन कवि ने किया है।

सूरुज (अस) सेवक ताकर अहै।
आठौ पहर फिरत जो रहै॥
सो अस बपुरै गहनै लीन्हा।
ओ धरि बाँधि चंडालै दीन्हा॥
गा अलोप होई, भा अँधियारा।
दीखै दिनहिं सरग महँ तारा॥
उवतै झँपि लीन्ह, धुप चाँपै।
लाग सरब जिउ थर-थर काँपै॥
जिउ कहँ परे ज्ञान सब झूठै।
सब होइ मोख गहन जौ छूटै॥
वही पृष्ट ३८४-८५।

अपने आखरी कलाम में जायसी ने अपनी जन्म तिथि के विषय में लिखा है:

नौ सौ बरस छत्तिस जब भए।
तब :एहि कथा के आखर कहे॥
—वही पृष्ठ ३८८।

कवि ने आखरी कलाम की रचना ९३६ हिजरी में की।

भा अवतार मोर नौ सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी॥

अर्थात् यह रचना आपने तीस वर्ष की आयु में लिखी। ९३६ हिजरी में से तीस वर्ष कम हो जाने पर ९०६ हिजरी आती है। बस यही जायसी की निश्चित् जन्म तिथि ठहरती है। कवि की जन्म तिथि के विषय में हम आखिरी कलाम के अंतर्साक्ष्य को ही सबसे अधिक प्रामाणिक मानते हैं।

जायसी का जन्म स्थान

कुछ विद्वानों का मत है कि मलिक मुहम्मद जायसी किसी अन्य स्थान के रहने वाले थे और बाद में आकर जायस में बस गये। पं० सुधाकर और डाक्टर ग्रियर्सन का यही मत है कि कवि यहाँ का रहने वाला नहीं था। इनके इस कथन का आधार जायसी की निम्नलिखित पंक्ति है :

जायस नगर धर्म अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू॥

'तहाँ आइ' शब्दों के आधार पर डा० ग्रियर्सन और पं० सुधाकर का मत यह बना कि जायसी ने कहीं बाहर से आकर जायस में निवास किया और वहीं पर पद्मावत् की रचना की। परन्तु इस विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का विचार इनके विपरीत है।

"—पर यह ठीक नहीं। जायस वाले ऐसा नहीं कहते। उनके कथनानुसार मलिक मुहम्मद जायस के ही रहनेवाले थे। उनके घर का स्थान अब तक वहाँ के कंचाने मुहल्ले में बताते हैं।"[1]

अंतर्साक्ष्य के आधार पर भी जायस उनका जन्म स्थान सिद्ध होता है। कवि ने लिखा है।

जायस नगर मोर अस्थानू।
नगर क नांव आदि उदयानू॥
तहाँ दिवस दस पहुनै आएऊँ।
भा बैराग बहुत सुख पाएऊँ॥
—वही पृष्ठ ३८७

यहाँ 'पहुनै' कहने का तात्पर्य भी कुछ विद्वान् कवि के बाहर से आकर जायस

---

[1] जायसी ग्रंथावली पृष्ठ ६

में बसने से ही लगाते हैं परन्तु हमारे विचार से कवि ने वैराग्य-भावना से प्रेरित होकर ही 'पहुनै' शब्द का प्रयोग किया है। इन पंक्तियों के पश्चात् "जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ 'आइ कवि कीन्ह बखानू ॥" 'आइ' शब्द का अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। उक्त वैराग्य की शब्दावली में 'आइ' का अर्थ जन्म लेना ही लगाना उचित है।

जायस नगर का पहला नाम 'उद्यान' था। इस विषय में डा० कमल कुल श्रेष्ठ लिखते हैं, "जायस के निवासी उदयनगर का सम्बन्ध उद्दालक मुनि से जोड़ते हैं, जिनकी चर्चा महाभारत आदि ग्रन्थों में आई है। उद्दालक का अर्थ शब्द भी होता है। सम्भव है, यह नगर पहले शहद के लिए प्रसिद्ध हो। कुछ लोगों का मत है कि यह उद्यान नगर का बिगड़ा हुआ रूप है। सम्भव है कि पहले यह जगह उद्यानों के लिए प्रसिद्ध हो। कुछ लोग इसका नाम उजालिक नगर भी देते हैं। इस विषय में देखिये—

अवध गजटियर भाग १, डिस्ट्रिक्ट गज़टियर (राय बरेली), दे ज्योग्रेफ़िकल डिक्शनरी आव ऐंशेन्ट एण्ड विडीविल इंडिया।

जायस शब्द 'जैश' शब्द से बिगड़कर बन सकता है। फ़ारसी में जैश का अर्थ पड़ाव होता है। शायद मुसलमान वहाँ आकर रहे हों। इससे 'जैश' से बिगड़कर इसका नाम 'जायस' पड़ गया हो। दूसरे शब्द 'जा-ए-ऐश' से भी इसका सम्बन्ध हो सकता है, जिसका अर्थ 'खुशी या आराम की जगह' होता है। शायद मुसलमानों की सेना ने कभी यहाँ पर आराम किया हो। तीसरे शब्द 'जाएस्त' से भी इसका सम्बन्ध हो सकता है, जिसका अर्थ है 'यह जगह है।' शायद कभी मुसलमानों ने यहाँ की उपजाऊ एवं हरी-भरी भूमि देखकर 'जाएस्त' कहा हो और इसका नाम भी वही पड़ गया हो।

यहाँ के निवासियों का विश्वास है कि यह जगह अच्छी नहीं है। हिन्दू एवं मुसलमान दोनों इसका नाम सवेरे-सवेरे नहीं लेवे। डर रहता है कि सवेरे-सवेरे यह नाम लेने से दिन भर रोटी नहीं मिलेगी और कोई आफ़त आ जाएगी। यह लोकोक्ति भी प्रचलित है—'जाइस जाइसना, जाइस तौ रहिसना, रहिसतौ खाइसना, साइस तौ सोइस ना, सोइस तौ रोइसना।"[1]

जायसी का नाम और वंश

महाकवि जायसी का असली नाम मुहम्मद था और जायस में रहने के कारण इन्हें लोगों ने जायसी कहना प्रारम्भ कर दिया था अर्थात् जायस के रहने वाले। इस प्रकार के प्रयोग हमें मुसलमान शायरों के नामों के साथ आज भी मिलते हैं। जैसे लखनवी, दहलवी, मलीहाबादी, मुरादाबादी, बरेलवी, मेरठी इत्यादि।

इसका संकेत हमें अंतर्साक्ष्य से भी मिलता है :

एक नयन कवि मुहम्मद गुनी।
सोइ बिमोहा जेइ कवि सुनी ॥

---

[1] मलिक मुहम्मद जायसी —भाग १० पृष्ठ ७-८।

जग सूझा एकै नयना हाँ ।
उआ सूक सूक जस नखतन्ह माहाँ ॥
—जायसी ग्रन्थावली पृ० ८ ।

महाकवि जायसी जहाँ हृदय के इतने सुन्दर और मोहक थे वहाँ शरीर से बहुत ही कुरूप और काने थे। कुछ विद्वान् उन्हें जन्म से ही एकाक्षी मानते हैं तथा दूसरों का मत है कि शीतला के प्रकोप से उनकी एक आँख जाती रही थी। हमें दूसरा ही मत मान्य है ।

मुहम्मद बाईं दिसि तजा , एक सखन एक आँखि ।

उक्त पंक्ति से सिद्ध होता है कि कवि बाँई आँख और बाँये कान से रहित थे।

जायसी का परिवार

महाकवि जायसी का परिवार जायस का कंचाने मुहल्ले में रहता था। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ़ था। इनके परिवार के लोग किसान थे। जायसी प्रारम्भ से ही बड़े दयालु और ईश्वर-भक्त थे। जायसी कभी अकेले खाना नहीं खाते थे। जो कोई भी उन्हें आस-पास में दिखाई देता था उसे ही वह अपने भोजन में शामिल कर लेते थे। एक कथा प्रचलित है कि एक बार जब जायसी भोजन करने के लिए बैठे तो आस-पास में कोई अन्य व्यक्ति साथ भोजन करने के लिए दिखलाई न दिया। अन्त में एक कोढ़ी दिखलाई दिया। जायसी ने उस कोढ़ी को ही अपने साथ भोजन पर बिठला लिया। भोजन करते-करते उस कोढ़ी के शरीर से कोढ़ चूकर खाने में गिर पड़ा। मलिक मुहम्मद जायसी ने वह अपने खाने के लुक़मे में उठा लिया। कोढ़ी ने जायसी का हाथ रोक कर कहा, "इसे तुम न खाओ, मैं खाऊँगा।" परन्तु जायसी उसे तुरन्त खा गये। इस घटना के पश्चात् वह कोढ़ी अदृश्य हो गया और कहते हैं तभी से जायसी की लगन भगवान् के प्रति पहिले से कई गुनी अधिक हो गई। अखरावट के एक दोहे में कवि ने इस घटना की ओर संकेत किया है :

बुंदहि समुद समान, यह अचरज कासौं कहौं ।
जो हेरा सो हेरान, मुहम्मद आपुहि आपु महँ ॥

जायसी के कहते हैं पुत्र भी थे ; परन्तु उनकी मृत्यु किसी दीवार के नीचे दबने या अन्य दुर्घटना से हो गयी। इसका जायसी पर और भी गहरा प्रभाव पड़ा और वह विरक्ति की ओर झुक कर घर से निकल गये।

जायसी की माता के नाम का अभी तक पता नहीं। मुहम्मद जायसी के दो भाई और थे :

१. मलिक शेख़ मुजफ़्फ़र।

२. मलिक शेख़ हाफ़िज। [१]

उक्त दो भाइयों में मलिक शेख़ हाजिज के वंशज जायस में आज भी हैं। जायस के एक शेख़ के पास वंश-वृक्ष[२] भी है परन्तु वह आधुनिक है, पुराना नहीं। इसलिए वह विश्वस्त नहीं। जायसी के माता-पिता की मृत्यु इनके बाल-काल में ही हो गई थी।

जायसी का बचपन और विवाह

माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् यह बचपन से ही साधुओं की संगति में रहने लगे थे।[३] इनका बचपन कोई आनन्दमय बचपन नहीं था। बड़े होने पर इनका विवाह हुआ अथवा नहीं यह विवादास्पद है। एक जनश्रुति के आधार पर इनका विवाह हुआ और दूसरी के आधार पर नहीं हुआ। पहिली के आधार पर यह बचपन में ज्यों ही साधुओं की संगति में गये सो गये, परन्तु दूसरी में इनके पुत्रों का मकान के नीचे दबकर मर जाने का जिक्र आता है।

जायसी के मित्र

जायसी के चार मित्र थे। इनके चार मित्रों के विषय में जहाँ अंतर्साक्ष्य से बहुत से प्रमाण मिलते हैं वहाँ जन-श्रुतियाँ भी प्रचलित हैं। मलिक यूसुफ़, मलिक पट्टी, मुहल्ला कंचाना के जमींदार थे, जिनके वंश में कोई भी जिन्दा नहीं बचा।[४] सालार खादिम सालार पट्टीमें रहते थे और यह शाहजहाँ के समय तक जिंदा रहे। इनकी हैसियत साधारण थी परन्तु यह तलवार चलाना खूब जानते थे। यह दानी और बुद्धिमान व्यक्ति थे।[५] मियाँ सलौने नामक जायस में उस समय तीन आदमी थे। ये तीनों ही सज्जन थे। जन-श्रुति के आधार पर इन तीनों का ही जायसी से प्रेम था। ये दोनों ही वीर, उदार और शेख बड़े धनी व्यक्ति थे। इनमें से एक जायसी के भाई तथा दूसरे बहनोई थे। शेख बड़े नाम के पाँच व्यक्ति कहे जाते हैं।[६] इसके विषय में कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिये :

> चारि मीत कवि मुहमद पाए।
> जोरि मिताई, सिर पहुँचाए॥
> यूसुफ मलिक पंडित बहु ज्ञानी।
> पहलै भेद बात वै जानी॥

---

१. वही।
२. ना० प्र० प० भाग २१—पृष्ठ ४६।
३. वही भाग २१—पृष्ठ ४३।
४. वही पृष्ठ ४६।
५. वही।
६. वही पृष्ठ ४४—४६

पुनि सेलार कादिम मतिमाहाँ।
खांडे दान उभै निति बाहाँ॥
मिया सलोने सिंघ बरियारू।
बीर खेतरन खड़ग जुझारू।
सेख बड़े, सब सिद्ध बखाना।
किए आदेश सिद्ध बड़माना॥
चारिउ चतुरदसा गुन पढ़े।
औ संजोग गोसाईं गढ़े॥

जायसी के गुरु

जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा में आते हैं। यह परम्परा दो शाखाओं में विभाजित हुई, एक जायस वाली तथा दूसरी मानिकपुर कालपी वाली। इन दोनों परम्पराओं का उल्लेख कवि ने किया है। मानिकपुर कालपी वाली शाखा लम्बी है। परन्तु जायस वाली शाखा का उतने विस्तार के साथ कवि ने उल्लेख नहीं किया। फिर भी अपने दीक्षा-गुरु अशरफ़ जहाँगीर तथा उनके पुत्र का उल्लेख मिलता है। सूफ़ियों के अनुसार ये दोनों परम्पराएँ इस प्रकार हैं :

निजामुद्दीन औलिया (मृत्यु सन् १३२५ ई०
|
सिराजुद्दीन शेष अलाउल हक़

मानिकपुर कालपी	जायस
शेख कुतुब आलम (पंडोई के, सन् १४१५)	×
शेख हशमुद्दीन (मानिकपुर)	×
सैयद राजे हासिद शाह	×
शेख दानियाल	×
शेख मुहम्मद	×
शेख अलहदाद	सैयद अशरफ जहाँगीर
शेख बुरहान (कालपी)	शेख हाजी
शेख मोहिदी (मुहीउद्दीन)	शेख मुहम्मद या मुबारक — शेख कमाल
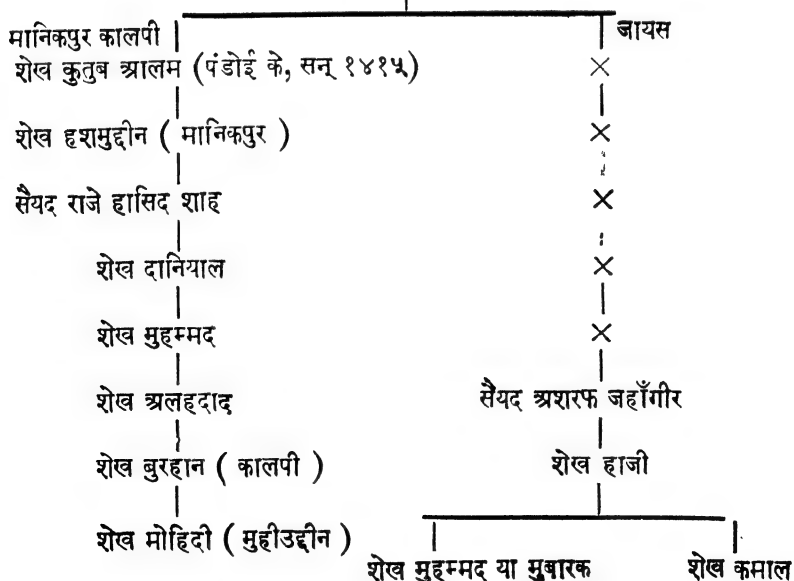
मानिकपुर कालपी वाली परम्परा का उल्लेख कवि ने 'पद्मावत और अखरावट' दोनों में विस्तार से किया है। डा० ग्रियर्सन ने इसी लिए सैयद अशरफ जहाँगीर को उनका गुरु न मानकर, मानिकपुर वाली परम्परा के शेख मोहिदी को उनका गुरु माना है। कवि ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है :

१—सैयद अशरफ़ पीर पियारा।
जेहि मोहिं दीन्ह पंथ उजियारा॥
ओहि घर रतन एक निरमरा।
हाजी सेख सबै गुन भरा॥
तेहि घर दुइ दीपक उजियारे।
पंथ देइ कहुँ दई सँवारे॥
सेख मुहम्मद पून्यो करा।[1]
सेख कमाल जगत निरमरा॥

२—गुरु मेहिदी सेवक मैं सेवा।
चलै उतराइल जेहि कर खेवा॥
अगुवा भए सेख बुरहानू।
पंथ लाइ मोहिं दीह्न गयानू॥
अलहदाद भल तेहि कर गुरू।
दीन दुनी रोसन सुरखरू।
सैयद मुहमद के वै चेला।
सिद्ध पुरुष संगम जेहि खेला॥
दानियाल गुरु पंथ लगाए।
हजरत ख्वाजा खिजिर तेहि पाए॥[2]
भए प्रसन्न ओहि हजरत ख्वाजे।
लिए मेरइ जहँ सैयद राजे॥

३—मानिक एक पाएउँ उजियारा।
सैयद असरफ पीर पियारा॥[3]

४—पा—पाएउँ गुरु मोहिदी मीठा।
मिला पंथ सो दरसन दीठा॥
नांव पियार सेख बुरहानू।
नगर कालपी हुत गुरु थानू॥

---

१. पद्मावत—स्तुति खण्ड—पृष्ठ ७
२. पद्मावत-स्तुति खंड—पृष्ठ ८।
३. जा० ग्रं० पृष्ठ ३८६।

औ तिन्ह दरस गोसाईं पावा।
अलहदाद गुरु पंथ लखावा॥
अलहदाद गुरु सिद्ध नवेला।
सैयद मुहमद के वै चेला।
सैयद मुहमद दीनहिं साँचा।
दानियाल सिख दीन्ह सुबाचा॥[1]

उक्त पद्यांशों से कवि की आस्था शेख मोहिदी और सैयद अशरफ़ दोनों में प्रतीत होती है। पद्मावत और अखरावट में तो कवि ने दोनों गुरुओं को मान्यता दी है परन्तु अपने 'आखरी कलाम' में केवल सैयद अशरफ जहाँगीर का ही जिक्र किया है। जायसी ने पीर शब्द का भी प्रयोग सैयद अशरफ़ के ही नाम से पहिले किया है। और अपने को उन्हीं का बन्दा माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—"·····इससे हमारा अनुमान है कि उनके दीक्षा-गुरु तो थे सैयद अशरफ, पर पीछे से उन्होंने मुही-उद्दीन की भी सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की। जायसवाले तो सैयद अशरफ़ के पोते मुबारकशाह बोदले को उनका पीर बतलाते हैं, पर यह ठीक नही जँचता।" हमारे मत से भी सैयद अशरफ ही पर गुरु के रूप में महाकवि जायसी की आस्था दिखलाई देती है और अन्य महापुरुषों के प्रति जो उनकी उदारता और सद् विचार दिखलाई देते हैं, वह उनके हृदय की विशालता है जिसमें हर बुद्धिमान और नेक ज्ञानी स्थान प्राप्त कर सकता था।

जायसी का सत्संग

मलिक मुहम्मद जायसी का सत्संग जहाँ एक ओर मुसलमान साधू-संतों के साथ था वहाँ दूसरी ओर कई अन्य सम्प्रदायों में भी वह उठते-बैठते थे। गोरखपंथी, रसायनी, वेदान्ती इत्यादि सभी सम्प्रदाय-वादियों के साथ उनका सत्संग चलता था। हिन्दू-साधु-सन्तों के इस सत्संग से महाकवि जायसी ने बहुत-सी बातें सीखीं। हठयोग, वेदान्त और रसायन इत्यादि की जो बातें उनके साहित्य में मिलती हैं वे सब इसी कारण हैं। इंगला, पिंगला और सुम्ना नाड़ियों तथा नाभिचक्र (कुण्डलिनी) हृतकमल, दशमद्वार (ब्रह्मरंध्र) इत्यादि का वर्णन पद्मावत में मिलता है। ब्रह्म की अनुभूति के लिए योगी कुण्डलनियों को जगाकर ब्रह्मरंध्र तक पहुँचने का प्रयास करता है। योगी की यह साधना निर्विघ्न समाप्त नहीं होती। जायसी ने योग की इस कथा में इस्लामी और भारतीय मान्यताओं का विचित्र सम्मिश्रण किया है। योग-साधना के मार्ग में जो विघ्न आते हैं उनका कारण जायसी ने शैतान को माना है और शैतान के लिए 'नारद' नाम का प्रयोग किया है। दशमद्वार का यही नारद पहरेदार है और काम क्रोध इत्यादि इसके सैनिक हैं।

[1] ३. वही पृष्ठ ३६४।

साधकों को यही बहकाता है। कवि ने अखरावट में इसका जिक्र किया है। यह नारद शैतान का काम करता है :

नारद दौरि संग तेहि मिला। लेइ तेहि साथ कुमारग चला॥

—जायसी ग्रन्थावली—पृ० ३२०।

भारतीय परम्परा में नारद को झगड़ा लगाने वाला कहा जाता है; इसीलिए शायद जायसी ने उन्हें शैतान का रूप दे डाला है। रसायनिकों की भी बहुत-सी बातें कवि ने इस प्रकार प्रयोग की हैं जिनका उपयोग सही नहीं कहा जा सकता। गोरखपंथियों की तो न जाने कितनी बातें मानी हैं। पद्मनी स्त्रियों की सिंहलद्वीप में कल्पना गोरखपंथियों की ही मान्यता है। जायसी एक सच्चे जिज्ञासु थे, जिन्होंने सभी धर्मों में मिलने वाली अपने मतलब की बातों को लिया है।

जायसी एक सत्संगी व्यक्ति थे, जो हिन्दू तथा मुसलमान, सभी साधु-सन्तों की संगत में बैठते थे और उनसे जो कुछ भी ग्रहणीय बातें होती थीं उन्हें ग्रहण करते थे।

जायसी सिद्ध फ़कीर के रूप में

मलिक मुहम्मद जायसी अपने समय के एक माने हुए सिद्ध फ़कीर थे। उनका, जहाँ भी वह जाते थे, बड़ा मान होता था। अमेठी के राजा मानसिंह आपकी बड़ी इज्जत करते थे और इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जायसी अमेठी के पास ही जंगल में रहा करते थे। जायसी की कब्र अमेठी के राजा के वर्तमान किले से पौन मील की दूरी पर है। परन्तु यह दुर्ग जायसी की मृत्यु के काफी दिन बाद बना है। यहाँ का पुराना दुर्ग इस कब्र से डेढ़ कोस की दूरी पर था। यह बात कि अमेठी के राजा को जायसी के आशीर्वाद से पुत्र हुआ और उन्होंने अपने दुर्ग के नजदीक ही उनकी कब्र बनवाई, गलत है।

जायसी की प्रसिद्ध थी कि वह अपनी जबान से जिस किसी के लिए भी जो कहा करते थे, वह अवश्य फलित होता था।

बहिर्साक्ष्य

जायसी के जीवन-वृत्त की उक्त जानकारी हमें अन्तर्साक्ष्य से प्राप्त होती है। अब हम थोड़ा-सा प्रकाश बहिर्साक्ष्यों पर भी डालेंगे। बहिर्साक्ष्य से जो सामग्री उपलब्ध है वह :

१. समसामयिक सामग्री।

२. बाद की जायसी से सम्बन्धित सामग्री।

समसामयिक सामग्री में एक जायसी का मकान और दूसरी जायसी की कब्र,—बस यही दो चीजें हैं। जायसी के मकान से जायसी की जीवन-सम्बन्धी कोई विशेष सूचना प्राप्त नहीं होती, इसी प्रकार जायसी की कब्र भी उनकी जीवन-सम्बन्धी जानकारी को आगे बढ़ाने में कोई विशेष योग नहीं देती।

जायसी के सम्बन्ध में जो लेख मिलते हैं वे काफी नवीन हैं, इसलिए उनका महत्त्व भी कुछ विशेष नहीं माना जा सकता।

अठारवीं शताब्दी में मीर हसन ने अपनी मसनवी में लिखा है :

थे मलिक नाम मुहम्मद जायसी।
वह कि पद्मावत जिन्होंने है लिखी॥
मर्दे आरिफ थे वह और साहब कमाल।
उनका अकबर ने किया दरयाफ्त हाल॥
होके मुश्ताक बुलवाया सिताब।
ताकि हो सोहबत से उनकी फैजयाब॥
साफ बातिन थे वह और मस्त अलमस्त।
लेक दुनिया तो है यह जाहिर परस्त॥
थे बहुत बदशक्ल और वह बदकवी;
देखते ही उनको अकबर हँस पड़ा॥
जो हँसा वह तो उनको देखकर।
यों कहा अकबर को होके चश्मेतर॥
हँस पड़े माटी पर ऐ तुम शहरयार।
या कि मेरे पर हँसे बे अख्तियार॥
कुछ गुनाह मेरा नहीं ऐ बादशाह।
सुर्ख बासत तू हुआ और मैं सियाह॥
अस्ल में माटी तो है सब एक जात।
अख्तियार उसका है जो है उसके साथ॥
सुनते ही यह हर्फ रोया दारगर।
गिर पड़ा उनके कदम पर आनकर॥
अलगरज उनको ब एजाजे तमाम।
उनके घर भिजवा दिया फिर वस्सलाम॥
साहबे तासीर हैं जो ए हसन।
दिल पै करता है असर उनका सखुन॥[1]

काजी नसरुनद्दी हुसैन जायसी ने अपनी याददाश्त में जायसी की मृत्यु ४ रज्जब ९४९ हिजरी मानी है।[2] नसरुद्दीनहुसैन अवध के नबाब शुजाउद्दौला के समय में हुए थे।

कविवर जायसी का एक चित्र भी मिलता है। यह चित्र शिरेफ के पदमावती के

---

१. नागरी प्रचारणी पत्रिका भाग २१—पृष्ठ ४४—४५।

२. जायसी ग्रंथावली (भूमिका) पृ० १०।

अनुवाद में प्रकाशित किया गया है। यह अब्दुलगनी के परशियन लिटरेचर एट मुगल कोर्ट में भी उलब्ध है परन्तु इसकी भी प्रामाणिकता अभी से प्रसिद्ध है।

जायसी के जीवन की अन्य घटनाएँ

जायसी के जीवन की एक प्रमुख घटना का उल्लेख हम जायसी का परिवार शीर्षक के अन्तर्गत कर चुके हैं, जिसका सम्बन्ध इनके एक कोढ़ी के साथ खाना खाने से है।

दूसरी घटना में कहा जाता है कि जायसी ने अपने 'पोस्तीनामे' में अफीमचियों का खूब खाका खींचा है। यह खाका जब जायसी ने अपने अफीमची पीर साहब को सुनाया तो वह इनपर बहुत नाराज हुए और इन्हें श्राप दिया कि इनके सातों बच्चों की मृत्यु छत गिरने से हो जाय। कहते हैं अन्त में ऐसा ही हुआ। परन्तु बाद में पीरसाहब ने जायसी को क्षमा भी कर दिया और कहा कि उनका नाम और ख्याति उनकी रचनाओं द्वारा होगी।[1]

जायसी के रूप के विषय में दो मत नहीं हैं। कहते हैं यह बहुत ही कुरूप थे। एक बार यह शेरशाह के दरबार में गये। इन्हें देखकर शेरशाह और उनके दरबारी हँस पड़े। जायसी ने यह देखकर अत्यन्त शांत भाव से पूछा,—"मोहि काँ हँससि, कि कोहरहि ?" मतलब यह है कि तुम मुझपर हँसते हो या मेरे बनाने वाले पर। यह पंक्ति इस प्रकार भी कही जाती है :

"कौंहरे हँसे कि मटिये।" अर्थात् कुम्हार पर हँसते हो या मिट्टी पर। यह सुनकर सब दरबारी चुप हो गये और सभी ने अपनी गलती के लिए क्षमा-याचना की। यह इनके जीवन की तीसरी प्रसिद्ध घटना है।

इस प्रकार की घटनाओं का इतिहासकार की दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नहीं है। ये प्रायः सभी घटनाएँ जनश्रुतियों के आधार पर कही जाती हैं, कोई भी प्रामाणिक आधार इनका उपलब्ध नहीं है।

जायसी की मृत्यु

जायसी की मृत्यु के सम्बन्ध में जनश्रुतियों के आधार पर कुछ उल्लेख मिले हैं। इनके आधार पर कवि की मृत्यु १५४२, १६३६, १६५६ ई० मानी जा सकती है। मृत्यु ई० सैयद काजी नासिरुद्दीन ने १५४२ मानी है, मुं० गुलाम शरूर लाहौरी ने १६३६ मानी है और १६५६ ई० का उल्लेख ना० प्र० प० के भाग ३१-पृष्ठ ५८ पर मिलता है। जायसी ने एक बार अमेठी के राजा से कहा था कि उनकी मृत्यु किसी दिन किसी शिकारी की गोली से होगी। इस पर राजा ने उनके रहने के आस-पास के जंगल में शिकार की मनाही करा दी थी। परन्तु एक दिन एक शिकारी उधर जा निकला और

[1] जा०—ग्र० (भूमिका) पृष्ठ ६

उसने बाघ की गरज सुनी। उसने अपनी रक्षा के लिए गोली चलाई जिससे बाघ न मर कर जायसी की मृत्यु हो गई। अमेठी के राजा ने जहाँ वह मरे वहीं उनकी कब्र बनवादी।

जायसी का व्यक्तित्व

शेख मलिक मुहम्मद जायसी एक उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। कहीं पर भी कोई सार की बातें उन्हें मिलतीं, तो वह उसे ग्रहण करने में न चूकते थे। धर्म के क्षेत्र में उनका दृष्टिकोण महाकवि कबीर के दृष्टिकोण तक नहीं पहुँच पाया था। ये मुसलमान थे और मुसलमान धर्म में इनकी पूरी आस्था थी। इस्लाम-धर्म तथा उसके पीर-पैगम्बरों को यह पूरी तरह मानते थे। परन्तु इनके किसी एक मत के विषय में कट्टरता नहीं थी। कबीर की सहजधर्मी मान्यताएँ इन्हें मान्य न होने पर भी ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्गों को जायसी ने मान्यता प्रदान की है। उन्होंने स्वीकार किया है कि आत्मा कई मार्गों से होकर ब्रह्म के पास तक पहुँच सकती है :

बिधना के मारग हैं तेते। सरग नखत, तन रोवाँ जेते॥

सिद्धान्त रूप से विविध मार्गों वाली विचारधारा को मान्य मानकर भी कवि ने अपनी मान्यता और श्रद्धा का पात्र मुहम्मदसाहब को ही माना है :

तिन महँ पंथ कहौं भल गाई। तेहि दूनौ जग छाज बड़ाई
से बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कैलास बसेरा॥

जायसी भावुक भक्त थे, परन्तु कबीर जैसे विचारक नहीं। समय की प्रचलित विचार-धाराओं में से कुछ मुक्ता चुनकर अपनी नई माला तो आप गूंथ सके परन्तु उसके आधार पर कोई पंथ खड़ा कर देना उनके बल-बूते की बात नहीं थी। यह शक्ति तो कबीर में ही थी। तुलसी और सूर भी अनुगामियों के रूप में ही इस दिशा में सामनेआते हैं, पथ-प्रदर्शकों के रूप में नहीं। जायसी अपना कोई नया पंथ चलाना भी नहीं चाहते थे। वह तो एक सच्चे दयालु भक्त थे जिनका जीवन बड़ा सरल और उदार था। वह सच्चे अर्थों में मानवता के पुजारी थे। दैन्य भावना उनमें कूट-कूट कर भरी थी और अभिमान तो मानों लेश मात्र उनमें था ही नहीं। कवि अपने को विद्वान् नहीं मानता और कितने स्पष्ट शब्दों में कहता है :

औ बिनती पंडितन सन भजा। टूट सँवारहु, नेरवहु सजा॥
हौं पण्डितन कर पछु लागा। किछु कहि चला तबल देइ डगा।

कबीर के समान जायसी में अहंकार तनिक भी नहीं था। वह सच्चे माने में भक्त थे, विचारकनहीं। जायसी की रचनाओं में कबीर के जैसी गर्वोक्तियाँ भी नहीं मिलतीं एक उदार भक्त का सरल जीवन उन्होंने पाया था जिसमें अभिमान और गर्व के लिए स्थान कहाँ।

महाकवि जायसी एक प्रसिद्ध फकीर थे, यह हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं। उनके

अनेकों शिष्य भी बन गये थे। ये शिष्य पद्मावत के भागों को गाते हुए इधर-उधर फिरा करते थे। कथा प्रसिद्ध है कि ऐसा ही एक जायसी का चेला पद्मावत का गान करता हुआ अमेठी (अवध) पहुँचा था। वह नागमती का बारहमासा गाता था और घर-घर से भीख माँगता था। एक दिन वह गाता हुआ अमेठी के राजा के द्वार पर भी पहुँच गया और वहाँ के राजा ने निम्नलिखित दोहा सुना :

कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।
सूखि बेलि पुनि पलहै, जौ पिव सींचै आइ।

जा० ग्र० पदमावत पृ० १५६

इस दोहे को सुनकर राजा मुग्ध हो गये। उन्होंने गाने वाले फकीर से पूछा कि यह दोहा किसने बनाया है। फकीर ने मुहम्मद जायसी का नाम बतलाया। राजा के मन में कवि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई और उसने उन्हें आदरपूर्वक अपने यहाँ बुलवाया।

जायसी प्रेम-पीर का पुजारी था और यही उसकी भावुकता का राज था।

सार निरूपण

मलिक मुहम्मद जायसी का असली नाम मुहम्मद था। जायसी इनका नाम जायस-निवासी के अर्थ में आता है। इनका जन्मस्थान जायस था। जायस नगर का पहला नाम उद्यान था। जायसी का जन्म ६०६ हिजरी में हुआ था। 'आखिरी कलाम' में जायसी ने यह बात स्पष्ट रूप से लिखी है। जायसी की ननिहाल, कहा जाता है जिला परतापगढ़ में, मनिकपुर थी। इनके माता-पिता जायस के कंचाने मुहल्ले में रहते थे। पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ था। इनकी माता के नाम के विषय में अभी जानकारी अपूर्ण है। मुहम्मद जायसी, मलिक शेख मुजफ्फर और मलिक शेख हाफ़िज ये तीन भाई थे। शेख हाफिज के परिवार के लोग आज भी जायस में रहते हैं, परन्तु जायसी बचपन में ही माता पिता की मृत्यु हो जाने पर फकीर हो गये थे।

इनके विषय में एक मत यह है कि इनका विवाह हुआ और बच्चे भी हुए परन्तु वे सब दीवार के नीचे दबकर मर गये और यह विरक्त हो गये। दूसरा मत यह है कि इनका विवाह ही नहीं हुआ और ये जीवन भर फकीर ही रहे, एक साधु महात्मा।

मलिक यूसुफ, सालार खादिम, मियाँ सलोने और शेख बड़े ये चारों मुहम्मद जायसी के मित्र थे, जिनके उल्लेख कवि ने वही पृष्ट ५३, ५४, ५५, ५६ पर किया है।

जायसी का शरीर विकृत था। उनकी एक आँख और उनका एक कान बेकाम थे।

जायसी अपने समय के सिद्ध फकीर थे और लोगों में इनकी बहुत बड़ी मान्यता था। निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा में आने वाले अशरफ़ जहाँगीर जायसी के गुरु थे।

जायसी का सम्बन्ध अमेठी के राजा से बहुत घनिष्ट था और वह इनका बड़ा मान करते थे। अमेठी के पास ही जंगल में इनकी कुटिया थी और अपने जीवन के अंतिम दिनों में यह यहीं रहते थे। यहीं पर एक दिन एक शिकारी की गोली से इनकी मृत्यु हुई और यहीं पर इनकी कब्र भी मिलती है। कहते हैं इसे अमेठी के राजा ने ही बनवाया था।

संक्षिप्त

१. जायसी का नाम मुहम्मद था।

२. जायसी का जन्म ६०६ हिजरी में जायस में हुआ था।

३. जायसी के पिता का नाम मलिक शेख ममरेज़ या मलिक राजे अशरफ था। माता का नाम अविदित है।

४. मलिक शेख मुजफ्फ और मलिक शेख हाफिज इनके दो भाई थे।

५. मलिक यूसुफ, सालार खादिम, मियां सलौने और शेख बड़े इनके चार मित्र थे।

६. जायसी की एक आंख और एक कान खराब थे। यह बहुत कुरूप थे।

७. यह निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा की जायस वाली शाखा के अशरफ़ जहांगीर के शिष्य थे।

८. यह हिन्दू और मुसलमान दोनों फकीरों का सत्संग करते थे।

९. एक मत इन्हें विवाहित और दूसरा अविवाहित मानता है। विवाहित मानने वाले कहते हैं इनके परिवार का एक दीवार के नीचे दबकर नाश हुआ जिससे वैराग्य में इनकी और भी अनुरक्ति हुई।

१०. जीवन के अंतिम काल में यह अमेठी के पास जंगल में रहते थे। यहीं एक शिकारी की गोली से इनकी मृत्यु हुई।

११. अमेठी के राजा, जो इनके भक्त थे, ने यहां पर इनकी कब्र बनवादी थी।

अध्याय २

प्रेम मार्गीय विचारधारा तथा समकालीन परिस्थियाँ

हिन्दू और मुसलमान संस्कृति का सम्पर्क

प्रेम-काव्य का हिन्दी साहित्य में प्रवेश विशेष रूप से मुसलमान सूफी कवियों द्वारा ही हुआ। भारत में सूफी सिद्धान्तों का प्रवेश बारहवीं शताब्दी में हुआ। यों भारतीय तथा मुसलमानी संस्कृति का पारस्परिक मेल-जोल तो नवीं शताब्दी से बढ़ना प्रारम्भ हो गया था। मौलाना सैयद सुलैमानी नदवी ने अरब और भारत के सम्बन्ध में यह लिखा है कि सूफी मत के प्रभाव स्वरूप हिन्दू मुसलमान बने और बहुत से मुसलमानों ने मूर्ति-पूजा प्रारम्भ कर दी। इसके अतिरिक्त जो जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन हुआ उससे धर्म की प्रतिष्ठा नहीं होती।

धर्म-प्रतिष्ठा का सम्बन्ध लोगों के स्वाभाविक प्रवाह से सम्बन्ध रखता है। सूफी संतों का भारतीय जनता पर प्रभाव पड़ा। इसका मुख्य कारण उनका सात्विक जीवन और सरल मनोवृति था। इसी से उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने का कारण बना। सूफी मत के भारत में अपनाये जाने का दूसरा प्रबल कारण यह रहा कि सूफी मत में वेदान्त के सभी लक्षण मिलते हैं और यदि उसे वेदान्त का रूपान्तर भी कह दिया जाये तो कुछ विशेष अनुचित नहीं होगा। सूफी धर्म को निर्माण-शैली का अध्ययन करने पर मालूम देता है कि उसमें सम्भवतः वेदान्तिक सिद्धान्तों का हाथ रहा हो। 'कलेला दमना' बैरूनी के मतानुसार 'पंचतंत्र' का अनुवाद है। फारसी में यह पुस्तक दूसरी हिजरी में अनुदित हुई। इस पुस्तक के लेखक का नाम 'वेद' है और प्रो० जखऊ अपनी 'इंडिया' पुस्तक की भूमिका में 'वेद' नाम को 'वेदव्यास' मानते हैं। वेदव्यास वेदान्त के प्रमुख आचार्य हुए हैं।

ईसा की बारहवीं शताब्दी में भारत के अन्दर सूफी मत आया। इस धर्म के निम्नलिखित चार सम्प्रदाय भारत में आये :

१. *चिश्ती सम्प्रदाय* : बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में।
२. सुहरावर्दी सम्प्रदाय : तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में।

३. कादरी सम्प्रदाय : पंद्रवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में।
४. नक्शबंदी सम्प्रदाय : सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में।

ये सम्प्रदाय भारत में तुर्किस्तान, ईरान और अफगानिस्तान से विविध सन्तों द्वारा भारत में प्रचारित हुए। ये सम्प्रदाय राजाश्रय प्राप्त करके भारत में नहीं आये। इनका कोई संगठन भी नहीं था। इन सम्प्रदायों के सन्त अपनी प्रेरणाओं के फलस्वरूप भारत में आये। इन सन्तों की साधना से जनता प्रभावित होती थी और राजाओं पर भी उनका प्रभाव पड़ता था। आचरण की पवित्रता और सात्विकता ही इनका बल था, इनके मत-प्रचार-साधन था। ये सरल तथा सहिष्णु व्यक्ति थे। हिन्दू धर्म के निष्ठावान धार्मिक संतों का सत्संग करते थे और उनके गुणों को ग्रहण करने की भावना इनमें रहती थी। ये कट्टरपन्थी नहीं थे। उदारता और हृदय की विशालता इनमें कूट-कूट कर भरी थी। अनुभव-सञ्चय के लिए ये विविध स्थानों का भ्रमण करते थे और विद्वानों से भेंट करते थे। बात सदा मीठी ही कहते थे। दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली स्पष्ट-वादी कबीर-प्रवृत्ति इनमें नहीं थी। सूफी धर्म का प्रसार भारत में पूर्ण शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्तों पर चलकर हुआ। यह इस्लाम का वह रूप नहीं था जो तलवार की धार पर चलकर या रक्त की सरिता में बहकर भारत-भूमि पर आया हो। प्रेम, आत्मीयता, सरलता और सच्चरित्रता के सहारे यह विचार-धारा भारत में फैली और इससे इस्लाम के प्रसार में योग मिला। यह स्थायी योग था जिसने जनता के दिलों में घर किया। किसी भय या आतङ्क के कारण इसका प्रसार नहीं हुआ।

चारों सम्प्रदायों की एकता

जिस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय की विविध शाखाएँ हैं, परन्तु उनके मूल सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं, उसी प्रकार सूफी मत के भी मूल सिद्धान्त एक समान हैं, जो इन चारों सम्प्रदायों को मान्य हैं और वहीं पर इन सब की एकता स्थापित होती है। ये चारों ही सम्प्रदाय, जहाँ तक इनका धार्मिक और सामाजिक सहिष्णुता का सम्बन्ध है, अत्यन्त उदार, सरल, सरस और प्रेमपूर्ण हैं। एकेश्वरवाद के ये सभी पक्षपाती हैं। बहुत से देवी देवताओं में इनकी आस्था नहीं थी। इन सम्प्रदायों का मत भी धार्मिक आचरण के क्षेत्र में है। धर्म के बहिर रूप का जहाँ सम्बन्ध है वहाँ कुछ भेद पैदा होता है। चिश्ती और कादरी सम्प्रदायों में संगीत को विशेष महत्त्व दिया गया है। अन्य दो सम्प्रदायों में संगीत को वह महत्त्व प्राप्त नहीं। दूसरे दोनों सम्प्रदायों में नृत्य तथा संगीत धार्मिक दृष्टिकोण से गलत है, अनुचित है। चारों ही सम्प्रदाय सरल मार्ग से ईश्वरोपासना के पक्षपाती हैं। प्रेम सभी का साधन है।

सूफी धर्म ने सामाजिक एकता का प्रचार किया। किसी भी जाति का कोई व्यक्ति क्यों न हो; जो इस्लाम धर्म को स्वीकार करता था वह सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से

देखा जाता था। उसके पूर्व-संस्कारों की रस्सियों में जकड़ा हुआ उसका यह जीवन मुक्त समझा जाता था और वह अन्तर्जातीय विवाह इत्यादि सम्बन्ध स्थापित कर सकता था। धर्म के सभी अधिकारों का उपभोग वह अपने जीवन-स्तर को ऊँचा लेजाने के लिए कर सकता था। व्यक्ति के बड़प्पन को मापने का मापदण्ड इनके पास उसके जीवन की सरलता, नम्रता, प्रेम और सहानुभूति थे, न कि उनकी जाति, वर्ण या वर्ग। ये सभी भेदभाव सूफ़ी विचारधारा में नगण्य हो गये। अपने इन्हीं गुणों के कारण इनके धर्म प्रचारकों ने जनता और राजकीय अमलों में महत्ता प्राप्त की। सरकारी न्यायाधीश भी इनका आदर करते थे। इन्हें सब लोग मलिक, शेख, खलीफ़ा, मोमिन इत्यादि आदरसूचक शब्दों से सम्बोधित करते थे।

जनता पर प्रभाव

सूफ़ी सम्प्रदाय ने सामाजिक उत्थान का यह नया मार्ग प्रदर्शित किया। यह ठीक है कि अपने को ऊँची कहने वाली जातियों का इससे विरोध हुआ और उन लोगों ने इसे अपनाने से इंकार कर दिया परन्तु भारत की जनता का वह प्रधान अंग नहीं था। देश की गिरी हुई जातियों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने इस्लाम धर्म को अपने जीवनोत्थान के लिए अपनाया। सूफ़ी संतों के चमत्कारों से प्रभावित होकर लाखों हिन्दू अपने जन्म जन्मान्तर को कर्मवादी बंधनों से मुक्त करके मुसलमान बन गये। सूफ़ी सिद्धांत का प्रसार इस प्रकार जनता में हुआ और इन सम्प्रदायों की नींव पड़ी।

चार सम्प्रदाय

चिश्ती सम्प्रदाय: ख्वाजा अब्दुल्लाह चिश्ती ही चिश्ती-सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक हैं। इनकी मृत्यु सन् ९६६ में हुई। सीस्तान के ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती इस सम्प्रदाय को भारत में लाये, जिनका समय सन् ११४१ और १२२६ के बीच का है। सन् ११९२ के आसपास आपने भारत में इस सम्प्रदाय का प्रचार किया। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती को पर्यटन का विशेष शौक था। पर्यटन के दौरान में आपने खुरासान, नैशापुर इत्यादि स्थानों का भ्रमण किया और बहुत से साधु-संतों का सत्संग किया। ख्वाजा उसमान चिश्ती हारूनी के शिष्य रहे हैं और बहुत निकट से उन्होंने उनके सिद्धान्तों और मान्यताओं का निरीक्षण किया, परखा और अपने जीवन में घटाया। मक्का और मदीना की यात्रा के दौरान में इनकी भेट शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी और शेख अब्दुल कादिर जीलानी से भी हुई और पारस्परिक विचार विमर्ष भी हुआ। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण-सेना के साथ सन् ११९२ ई० में यह भारत आये और सन् ११९५ में अजमेर की यात्रा की। अजमेर को ही आपने अपना प्रधान केन्द्र बनाया। ९३ वर्ष की आयु में यहीं पर आपका सन् १२३६ में देहान्त हुआ। दिल्ली के प्रसिद्ध विद्वान ख्वाजा हसन निजामी इन्हीं के वंशज हैं। भारत के सूफ़ी सम्प्रदायों में यह सबसे पहिला सम्प्रदाय है। इस

सम्प्रदाय के लोगों की संख्या भी अन्य से अधिक है। मुगल सम्राटों पर इस सम्प्रदाय के सूफी फकीरों का काफी प्रभाव रहा है। शेख सलीम चिश्ती जिनके आशीर्वाद से अकबर के पुत्र हुआ माना जाता है, इसी सम्प्रदाय के फकीर थे। भारत में इसके कई केन्द्र हैं और जैसा ऊपर लिख चुके हैं, प्रधान केन्द्र अजमेर है। जहाँ प्रतिवर्ष देश के कोने-कोने से लाखों मुसलमान ज्यारत करने के लिए जाते हैं।

२. *सुहरावर्दी सम्प्रदाय* : सुहरावर्दी सम्प्रदाय का प्रचार भारत में सर्व प्रथम सैयद जलालुद्दीन सुर्खपोश ने किया। यह समय सन् ११६६ से १२६१ के बीच का है। जलालुद्दीन सुर्खपोश का जन्म बुखारा में हुआ था परन्तु यह स्थायी रूप से ऊँच (सिंध) में रहे। भारत के अनेकों स्थानों में आपने अपने मत का प्रचार और प्रसार किया। सिंध, पंजाब और गुजरात में आपने अपने मत के केन्द्र स्थापित किये। सुहरावर्दी सम्प्रदाय में बहुत से प्रतिभाशाली तथा ख्याति प्राप्त संत फकीर हुए हैं। इस सम्प्रदाय ने वास्तव में सब सम्प्रदायों से अधिक प्रतिभाशाली महात्मा पैदा किये और इस सम्प्रदाय का प्रचार भी भारत में अन्य तीन सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक हुआ।

सैयद जलालुद्दीन सुर्खपोश के पौत्र जलाल इब्नअहमद कबीर मखदूम-इ जहानिया के नाम से मशहूर हुए। इन्होंने छत्तीस बार मक्के की यात्रा की। जलाल इब्नअहमद के पुत्र सैयद मुहम्मद शाह आलम की प्रसिद्धि इनके पिता से भी अधिक हुई। इनकी मृत्यु सन् १४७५ ई० में हुई। इनकी कब्र अहमदाबाद के नज़दीक रसूलाबाद में है।

इस प्रकार इस सम्प्रदाय का प्रथम प्रसार सिंध, पंजाब में होकर फिर एक दम बंगाल और बिहार तक पहुंच गया। इस सम्प्रदाय के संतों का प्रभाव जनता तथा राज कर्मचारियों तथा राजाओं पर भी पड़ा। बंगाल के राजा कंस के पुत्र जटमाल ने अपना धर्म इस सम्प्रदाय के प्रभाव में आकर किया। इन्होंने 'जादू जलालुद्दीन' नाम से प्रसिद्धि पाई। राजवंशों में श्रद्धा पाकर यह सम्प्रदाय काफी फला-फूला और इसका प्रसार बहुत तीव्र गति के साथ हुआ।

३. *कादरी सम्प्रदाय* : बगदाद के शेख अब्दुल कादिर जीलानी कादरी सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक हैं। इनका समय सन् १०७८ से ११६६ ई० तक का माना जाता है। लोकप्रियता के नाते यह सम्प्रदाय भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अब्दुल कादिर जीलानी एक प्रतिभा सम्पन्न, शालीन, सरल तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व के व्यक्ति थे। इनके इन चरित्र-गुणों के कारण सम्प्रदाय के प्रसार में बहुत महत्वपूर्ण योग मिला। उत्कट प्रेमावेश और असीम भावुकतापूर्ण व्यवहार इनके सिद्धान्तों की विशेषता है। इस्लाम का सरस प्रचार इसी सम्प्रदाय द्वारा हुआ। सूफी फकीरों में अब्दुल कादिर जीलानी का एक महत्वपूर्ण स्थान है और उनके प्रति मान्यता अन्य सम्प्रदायों के व्यक्तियों में भी कम नहीं है।

अब्दुल कादिर जीलानी के वंशज सैयद बंदगी मुहम्मद गौस इस सम्प्रदाय को भारत में लाये। सर्व प्रथम इसका प्रारम्भ भी सिंध में ही हुआ। सैयद जलालुद्दीन सुर्खपोश के द्वारा अपनाये गये ऊँच (सिंध) नामक स्थान ही आपने भी अपने निवास-स्थान के निमित्त चुना। सन् १५१७ ई० में ऊँच में ही मुहम्मद गौस का देहावसान हुआ। इनका मृत्यु संवत् १५१७ ई० है। इस सम्प्रदाय की उत्कट भावुकता ने भारतीय भक्ति का दामन इतने निकट से छुआ कि आम जनता में इसके लिए श्रद्धा उत्पन्न हो गई। भारतीय भक्ति-भावना और इनका प्रेम पद्धति में सामंजस्य स्थापित हुआ। इस सम्प्रदाय के संतों की चमत्कार पूर्ण किंवदंतियाँ आज भी कम प्रचलित नहीं हैं। यों तो इस मत का प्रसार समस्त उत्तरी भारत में रहा परन्तु काश्मीर में विशेष रूप से इसकी प्रभुता स्थापित हुई। कविवर गजाली, प्रसिद्ध सूफी कवि, इसी सम्प्रदाय से थे।

४. *नक्शबंदी सम्प्रदाय* तुर्किस्तान के ख्वाजा वहा अल-दीन नक्शबन्द इस सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक थे। सन् १३८९ ई० में इनका देहावसान हुआ। भारत में नक्शबंदी सम्प्रदाय के प्रसार का श्रेय ख्वाजा मुहम्मद बाकी गिल्लाह बैरंग को पहुँचता है। मुहम्मद बाकी गिल्लाह का देहावसान सन् १६०३ ई० में हुआ शेख अहमद फारूकी सरहिन्द वालों को भी कुछ विद्वान् लोग इस सम्प्रदाय का भारत मे प्रथम प्रवर्तक मानते हैं। इनकी मृत्यु सन् १६२५ ई० है। नक्शबन्दी सम्प्रदाय का प्रकाश भारत में उक्त तीनों सम्प्रदायों की अपेक्षा बहुत कम हुआ। इसका प्रधान कारण यही था कि विचारों का वह सरल और भावनात्मक प्रवाह जो अन्य तीनों सम्प्रदायों मे मिलता था, उनका इसमें लोप रहा। इस सम्प्रदाय की विचारधारा काफी जटिल थी जिसकी गुत्थियाँ सुलझाना साधारण व्यक्तियों का कार्य नहीं था। साधारण लोगों के मनोवैज्ञानिक स्तर से ऊपर इस सम्प्रदाय के लिए बातें करते थे, जिनमें जनता रुचि नहीं ले सकी। इनका तर्क जाल काफी क्लिष्ट था और वह प्रेम-प्रवाह का सरल साधन नहीं बन सकता था। इसीलिए इस सम्प्रदाय का प्रसार काफी सीमित रहा। लोक-रुचि में यह वह पैठ पैदा नहीं कर सका जो इससे पूर्व भारत में प्रचारित होनेवाले सम्प्रदायों न की।

प्रसार

उक्त चार धाराओं में बहकर सूफी मत और इस्लाम धर्म का प्रचार भारत की जनता में हुआ। भारत का वह जन-समुदाय, जिसके प्रति अपने को उच्च वर्गीय हिन्दू कहलाने वाले इज्जत के पैत्रिक ठेकेदारों का व्यवहार घृणापूर्ण था, इस्लाम धर्म के इन सम्प्रदायों की ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने काफी बड़ी संख्या में अपना मत परिवर्तन किया। शासन करने वाले धर्म का धर्मावलम्बी होने का प्रलोभन तथा सामाजिक विषमताओं से मुक्ति पाने की उत्कट आकांक्षा ने निम्नवर्गीय जनता को उस ओर झुकने के लिए प्रोत्साहित किया। इन्हीं कारणों के फलस्वरूप बहुत से व्यक्ति इन सम्प्रदायों में दीक्षित हो गये।

देश की राजनैतिक स्थिति

जायसी का रचना-काल महाकवि कबीर से लगभग १०० वर्ष पश्चात् आता है। लगभग सन् १५४० के आसपास का यह समय था। जायसी ने मसनवी की रूढ़ि का पालन करते हुए 'शाहे-वक्त' के रूप में शेरशाह की तारीफ की है।

शेरशाह देहली सुलतानू। चारहु खंड तपै जस भानू॥
ओही छाज राज औ पाटू। सब राजै भुइँ धरा ललाटू॥
जाति सूर औ खाँडे सूरा। और बुधिवंत सबै गुन पूरा॥
सूर नवाए नव खँड वई। सातउ दीप दुनी सब नई॥

पदमावत पृ० ५

राजनैतिक स्थिति इस समय उतनी अव्यवस्थित नहीं थी कि जनता में पहिले जैसी आतंक की भावना रही हो। मुसलमानों को हिन्दुओं के सम्पर्क में आते काफी दिन हो गये थे और राज्य-व्यवस्था भी सुचारू रूप से संचालित थी। सामंतशाही का दौर तो वह था ही, जिसमें हिन्दू तथा मुसलमान राजों के व्यवहार करीब-करीब एक से ही थे। शेरशाह का पद्मावती के रूप पर रीझकर आक्रमण करनेवाली बात बिल्कुल वैसी ही है जैसे किसी हिन्दू राजा द्वारा किसी दूसरे राजा पर उसकी कन्या को अपहरण करने के लिए आक्रमण कर देना।

वैसे देश और समाज का चित्रण कवि ने नहीं के बराबर ही किया है। कवि का यह ग्रन्थ भावना और कल्पना प्रधान ही है। उत्तरार्ध ऐतिहासिक है जिसमें राजपूतों की वीरता और डटकर दुश्मन का सामना करने की क्षमता और साहस का आभास मिलता है। उनकी होशियारी और राजनैतिक दाव पेंचों का भी पालकियों में लुहारों और राजपूतों को भेजकर अपने राजा को छुड़ालाने से मिलता है और अन्त में अपने पतियों को अपने देश की रक्षा में मिटा हुआ देखकर जौहर की प्रथा द्वारा हँसते-हँसते जलजाने के इतिहास का भी विवरण है। इस प्रकार कुछ राजनैतिक और कुछ सामाजिक तत्व ग्रन्थ में मिलते है। यही समय की राजनीति और समाज व्यवस्था का प्रभाव था।

जनता पर प्रभाव

सूफी ग्रन्थों का प्रभाव धार्मिक सामंजस्य के रूप में जनता पर कुछ बहुत अधिक नहीं हो सका। इन सम्प्रदायों को अपनाने वाले केवल मुसलमान लोग ही थे, हाँ उनमें वे मुसलमान अवश्य थे जिन्हें तलवार के जोर से मुसलमान बनाया गया था और मुसलमान बनाकर फिर अपनी ऊँची कौमों के बराबर नहीं बिठलाया गया था। सूफी धर्म ने उन सबको एक साथ रखने का प्रयत्न किया और प्रेम-साधना के क्षेत्र में छोटे बड़े के बन्धनों को ढीला कर दिया। सूफी धर्म में वैष्णव भक्ति का रूप मिलता है। यह उसके काफी निकट है, कुछ मूल सिद्धान्तों को छोड़कर इसीलिए हिन्दू जनता को भी यह

प्रभावित कर सकता था परन्तु उसके अन्दर इसकी पैठ इतनी अधिक न हो सकी। फिर इस मत के प्रचारकों ने जिन ग्रन्थों की रचना की उनका महत्त्व साहित्य की दृष्टि से चाहे जितना भी हो परन्तु प्रचार और धार्मिक दृष्टि कोण के नाते उसे वह स्थान प्राप्त नहीं है। तुलसी की रामायण और 'सूर-सागर' की जो पैठ जनता में हुई वह सूफी फकीरों के साहित्य की न हो सकी। सूफियों की प्रेम अभिव्यंजना जनता न समझ सकी और इसीलिए उसका कम प्रभाव रहा।

संक्षिप्त

१. सूफी धर्म के चार सम्प्रदाय बने।
(अ) चिश्ती सम्प्रदाय।
(आ) सुहरावर्दी सम्प्रदाय।
(इ) कादरी सम्प्रदाय।
(ई) नक्शबन्दी सम्प्रदाय।

२. चारों का ही प्रचार भारत में हुआ। सिंध, अजमेर, बंगाल इसके प्रचार प्रधान क्षेत्र रहे।

३. इस मत का प्रचार हिन्दुओं मे अधित नहीं घुस सका, हालाँ कि हिंदुओं के साथ इसका पारस्परिक सम्पर्क काफी रहा और उसमें कटुता भी नही रही।

४. वह मत तलवार के आधार पर फैलकर प्रेम और मोहब्बत के आधार पर फैला।

५. राजनैतिक दशा अत्यन्त स्थिला न होने पर भी हिंदुओं की पराधीनता का समय तो था ही। कुछ हिंदू राजे थे जिन्हें मुसलमानी हमलों का भय रहता था। परन्तु हमला होने पर वे सामना खूब डटकर करते थे और अंत समय तक हार नहीं मानते थे। पुरुषों के मरने के पश्चात् स्त्रियाँ सती हो जाती थीं।

अध्याय ३

जायसी की रचनाएँ और उनकी भाषा

महाकवि जायसी के ग्रन्थों की उपलब्ध नामावली निम्नलिखित है :

१. पदमावत	११. मुकहरा नामा
२. अखरावट	१२. मुखरा नामा
३. आखिरी कलाम	१३. पोस्ती नामा
४. सखरावत	१४. मुहरानामा (होली नामा)
५. चंपावत	१५. नैनावत
६. इतरावत	१६. स्फुट छंद
७. मटकावत	१७. कहार नामा
८. चित्रावत	१८. मेखरावट नामा
९. खुर्वा नामा	१९, घनावते
१०. मोराई नामा	२०. सोरठ
	२१. परमार्थ जपजी।

उक्त ग्रन्थों में पदमावत, अखरावट और आखिरी कलाम प्रकाशित हो चुके हैं। इनके स्वरूप, भाषा, विषय तथा अन्य जानकारी के विषय में ज्ञान प्राप्त करना कठिन नहीं। इन रचनाओं के अन्दर कवि का नाम अनेकों स्थानों पर दोहराया गया है। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि ये रचनाएँ जायसी कृत हैं। ग्रन्थ २ से १४ तथा १८ का उल्लेख बही में मिलता है। ग्रन्थ १५ का उल्लेख आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जा० ग्र० के भूमिका भाग पृष्ट १६ पर किया है। ग्रन्थ १६ का उल्लेख सैयद कल्बे मुस्तफा ने मलिक मुहम्मद जायसी' (१९४१) पृष्ठ १६४ में किया है ग्रन्थ १७ का उल्लेख ना० प्र० प० भाग १४ के ४१८ पृष्ठ पर मिलता है। अंतिम तीन ग्रन्थों का उल्लेख तासी ने 'इस्तवाद दला लितैरात्यूर ऐंदूई ऐंदुस्तानी—भाग २ (१८७०) पृष्ठ ६८ पर किया है। तासी का कथन है कि सोरठ तथा जयजी की पांडुलिपियाँ 'बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' में और घनावत की प्रति डा० स्प्रेंगर के

पास है। इनके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों के हमें केवल नाम मात्र ही उपलब्ध हैं और वे भी जन-श्रुतियों के आधार द्वारा पांडुलिपियाँ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकीं। पोस्तीनामे के विषय में एक किंवदंती प्रचलित है जिसका उल्लेख हम प्रथम अध्याय में कर चुके हैं। इसकी दो पंक्तियाँ भी मिलती हैं :

जब पुस्ती मां लागे पात। पुस्ती बूदे नौ-नौ हात॥
जब पुस्ती मां लागे फूल। तब पुस्ती मटकावै कूल॥[1]

इन पंक्तियों को भी विश्वसनीय मान लेना भूल ही है। प्रथम अध्याय में आई किंवदंती में मुबारक शाद बोदले ने जायसी के चौदह ग्रन्थों की ओर संकेत किया है। ये चौदह ग्रन्थ उक्त २१ में से प्रथम चौदह हैं।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ स्फुट पद भी मिलते हैं परन्तु उनकी भी मान्यता संदिग्ध ही है। स्फुट काव्य के कुछ नमूने कल्बे मुस्तफा ने उद्धरणों के रूप में दिये हैं। ला० सीताराम ने जायसी के सात ग्रन्थ स्वीकार किये हैं। उनकी मान्यता का आधार अवध गजटियर है।

हम यहाँ जायसी के नाम के साथ केवल तीन रचनाओं को ही जोड़ते हैं जिनके विषय में विशेष संदिग्धता का कोई कारण नहीं। ये ग्रन्थ पदमावत, अखरावट और आखिरी कलाम हैं।

पदमावत

नाम: पदमावत का नाम विद्वानों ने पदमावत, पद्मावत, पद्मावति और पद्मावती करके लिखा है। यदि तत्समता के दृष्टिकोण से विचार करें तो यह नाम 'पद्मावती' होना चाहिये परन्तु जायसी ने पद्मावती शब्द का प्रयोग नहीं किया होगा क्योंकि उनकी भाषा विशुद्ध अवधी है और उसमें तत्समता का अभाव है। फिर यदि अवधी के सामान्य नियमों को काम में लायें तो इसका नाम पदमावत के स्थान पर पदमावति होना चाहिए परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी ग्रन्थावली में इसका नामकरण 'पदमावत' ही किया है। हम अब प्रचलित पदमावत नाम को मान्यता देते हुए और इसमें कोई हेर फेर बदल करना उचित नहीं समझते।

पदमावती का रचना-काल : पदमावत की रचना अंतर्साक्ष्य के अनुसार कवि ने हिजरी ६४७ ईसवी सन् १५४० में की थी। इसी स्थान पर सामायिक राजा शेरशाह सूरी का भी कवि ने यश-गान किया है। शेरशाह लगभग १५४० ई० में गद्दी पर बैठा था। इसलिये यह सन् ठीक प्रतीत होता है। कवि लिखता है :

सन् नौसै, सैंतालिस अहा।
कथा आरम्भ बैन कवि कहा॥[2]

---

[1]. डा० कमल कुलश्रेष्ठ कृत मलिक महम्मद जायसी—भाग १ — पृष्ठ २२

[2]. यह पाठ ग्रियर्सन तथा सुधाकर द्विवेदी ने पदमावति पृष्ठ ३५ पर किया है।

उक्त पंक्ति जा० ग्र० ६ पर इस प्रकार मिलती है:

सन् नौ सै सत्ताइस अहा ।
कथा अरम्भ बैन कवि कहा ॥

हिजरी ६२७ सन् १५२० ई० के पास पड़ता है और इस समय भारत में इब्राहीम लोदी राज्य करता था। शेरशाह का राज्य सन् १५४० से शुरू होता है। फिर कवि ने समसामयिक राजा के रूप में शेरशाह का चित्रण क्यों किया ? इस विषय में विद्वानों का मत है कि कवि से उक्त पंक्ति में 'अहा' शब्द का प्रयोग इसीलिए किया है ! हो सकता है ग्रन्थ समाप्त होने पर भूमिका लिखते समय शेरशाह का राज्य आ गया हो और उसका वर्णन कवि ने किया हो :

६४७ हिजरी यों भी गलत जचता है कि कवि ने आखिरी कलाम अर्थात् आखिरी रचना का रचनाकाल ६३६ हिजरी कहा है:

नौ सौ बरस छत्तिस जब भए ।
तब एही कथा के आखर कहे ॥

जा० ग्र० पृष्ठ ३८८

जब कवि की आखिरी रचना ही ६३६ हिजरी में लिखी गई तो भला पद्मावत ६४७ में किस प्रकार लिखी जा सकती थी। पद्मावत का रचना-काल इस प्रकार ६२७ हिजरी सन् १५२७ ई० ही ठीक ठहरता है। सन १५२७ में ही जायसी ने पद्मावत की रचना प्रारम्भ की होगी।

पद्मावत के अनुवाद और संस्करण: पद्मावत का अनुवाद अंग्रेजी, बंगला, उर्दू, फारसी, खड़ीबोली, फ्रेंच, पश्तो इत्यादि भाषाओं में हो चुका है। इतनी भाषाओं में इस ग्रंथ का अनुवाद होना ही इसकी लोकप्रियता प्रमाणित करता है। मूल पद्मावती के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं:

(१) *पद्मावतः* पद्मावत का सबसे पहला संस्करण सन १८८१ में पद्मावत नाम से नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ने प्रकाशित किया। इसका पाठ बहुत अशुद्ध है।

(२) *पद्मावतः* का एक संस्करण सन् १८६४ ई० में चन्द्रप्रभा प्रेस काशी ने प्रकाशित किया। यह भी नवलकिशोर के संस्करण के ही समान है।

(३) *पद्मावतः* पण्डित सुधाकर द्विवेदी तथा ग्रियर्सन ने पद्मावत का पहला भाग सूली खण्डन का प्रकाशित कराया। इसका आधार बंगाल रायल एशियाटिक सोसायटी में मिलने वाली प्रति है। यह संस्करण टीका सहित है। वैज्ञानिक संपादन की दृष्टि से यह संस्करण सबसे अच्छा है।

(४) *पद्मावतः* सन् १६२५ में पद्मावत का एक संस्करण ला० भगवानदीन ने प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित कराया। यह रत्नसेन पद्मावती भेंट खण्ड तक

ही प्रकाशित किया गया है। किन पांडुलिपियों के आधार पर इसका सम्पादन हुआ यह पुस्तक में नहीं दिया।

(५) *जायसी ग्रन्थावली*: पद्मावत के इस संस्करण का सम्पादन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। इसका प्रकाशन सन् १९२४ ई० में नागरी प्रचारिणी सभा बनारस द्वारा हुआ। यह संस्करण विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से सबसे अच्छा है। परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह नहीं दिया कि इसका पाठ उन्होंने किस पांडुलिपी के आधार पर किया।

(६) पद्*मावती*: डा० सूर्यकान्त शास्त्री ने सन १९३४ में पद्मावत का एक संस्करण पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर से प्रकाशित करवाया। यह संस्करण भी सूलीखण्ड तक ही है और पं० सुधाकर तथा ग्रियर्सन वाले संस्करण के पाठ की नकल है।

उक्त संस्करणों के अतिरिक्त पद्मावत के जो संस्करण प्रकाशित हुए है वे कोई विशेष महत्वपूर्ण नहीं हैं।

पद्मावत की कथा

पद्मावत की कथा को जायसी ने ५७ खण्डोंमें वर्णित किया है! कथा इस प्रकार है:

(१) *स्तुति खंड*: यह पद्मावत का प्रथम खंड है जिसमें कवि ने सृष्टि को बनाने वाले, पैगम्बर, जायसी के चार मित्र, गुरु-परम्परा का उल्लेख मिलता है। इन सभी की कवि ने स्तुति तथा प्रशंसा की है। कवि ने अपना भी संक्षिप्त परिचय इस खंड में दिया है। पद्मावत लिखने के समय का संकेत भी इसी खंड में मिलता है। पूरी कथा की बहुत संक्षिप्त रूप रेखा इस खंड मे कवि ने प्रस्तुत की है।

(२) *सिंहलद्वीप वर्णन-खंड* : इस खंड में कवि सात द्वीपों का उल्लेख करता ह और फिर उन सातों द्वीपों में कवि सिंहलद्वीप की श्रेष्ठता वर्णित करता है। सिंहल द्वीप के राजा गंधर्वसेन का कवि परिचय देता है। सिंहलद्वीप के प्राकृतिक सौंदर्य की सराहना करता है। कुआ, बावड़ी, मोदक, पनिहारियाँ, ताल-तालाब, सिंहल नगर, ऊँचे मकान बाजार, वेश्या, मालिन, पंडित, नट, ठग, नाटक करने वाले, चिड़ियों का खेल दिखलाने वाले और इसी प्रकार अनेकों चीजों का कवि वर्णन करके वहाँ का वातावरण पैदा करता है। सिंहलद्वीप की समृद्धि का वर्णन कवि खूब खुलकर प्रस्तुत करता है। द्वारों पर कोतवाल, सिंहलगढ़, कंचनवृक्ष, हाथी, घोड़े, राजसभा, राजमहल सभी का कलात्मक वर्णन इस खंड में मिलता है। यहीं पर कवि गंधर्वसेन की पटरानी चंपावती का भी परिचय देता है। सिंहलद्वीप के अनुपम सौंदर्य का कवि वर्णन करता है।

सब संसार परथ मैं आए सातौं दीप।
एक दीप नहिं उत्तिम सिंघल दीप समीप ॥

जा० ग्र० पृष्ठ १०

कुँवरि बतीसो-लच्छनी अस सब माँह अनूप।
जावत सिंघल दीप के सबै बखाने रूप॥
जा० ग्र० पृष्ठ १८

(३) *जन्म-खंड* : चम्पावती और गधर्वसेन के पद्मावती का जन्म होता है। पद्मावती बहुत सुन्दर थी। उसके सौंदर्य का कवि ने अपूर्व वर्णन किया है :

इते रूप मैं कन्या तेहि सरि पूज न कोइ।
धनि देख रूपवंता जहाँ जन्म अस होइ॥

पद्मावती ने पाँच वर्ष की आयु में विद्या पढ़ना आरम्भ किया। पद्मावती के बारह वर्ष की होने पर गधर्वसेन ने सात खंडवाले महल में उसके अलग रहने की व्यवस्था की। यहाँ उसकी सखियाँ उसके पास आती थीं। पद्मावती का एक प्रिय हीरामन तोता था। जो महा पंडित और वेद शास्त्रों का ज्ञाता था। गंधर्व सेन को अपने यश और वैभव पर अभिमान था इसी लिए वह पद्मावती का विवाह किसी से करना नहीं चाहता था, पद्मावती इस स्थिति में एक बन्दिनी के समान थी। एक दिन जब उसे कामदेव ने सताया, तो वह हीरामन तोते से बोली :

सुनु हीरामनि कहौं बुझाई। दिन-दिन मदन सतावै आई॥
पिता हमार न चाले बाता। त्रासहि बोल सकै नहिं माता॥
देस के बर मोहि आवहिं। पिता हमार न आँख लगावहिं॥
जोबन मोर भयऊ जस गंगा। देह देह हम्ह लाग अनंगा॥"

इस पर हीरामन ने समझाकर कहा :

"आज्ञा देउ देखौं फिरि देसा। तोहि जोग बरि मिलै नरेसा॥"

तोते की यह बात किसी दुर्जन ने सुन ली। बात राजा के कानों तक पहुँच गई और राजा ने तुरन्त तोते को मरवाने की आज्ञा दे दी। परन्तु जब तक मारने वाले वहाँ आये, रानी ने तोते को छुपा दिया। इसके पश्चात् तोते ने यहाँ रहना उचित नहीं समझा और वह रानी से बोला कि जब राजा ही रूठ गये तो उसका वहाँ सुरक्षित रहना भला किस प्रकार संभव हो सकता है :

सुअटा रहै खुरुक जिउ, अबहिं काल सो आव।
सत्रु अहै जो करिया, कबहुँ सो बोरै नाव॥

(४) *मानसरोदक खंड* : एक दिन पूर्णमासी को पद्मावती अपनी सखियों के साथ मानसरोवर पर गई। फिर सखियों के साथ खेल कूद के पश्चात् पानी में जल क्रीड़ा के लिए उतरी। वहाँ एक सखी का हार पानी में गिर गया जिससे वह रोने लगी। फिर वह हार आप से आप पानी पर तिर आया और उसे पाकर सभी सखियाँ प्रसन्न हो गई। वहाँ के सौंदर्य का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है :

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर ।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर ॥

(५) *सुआ-खंड*... पद्मावती जब मानसरोवर पर क्रीड़ा कर रही थी तो उसी समय हीरामन तोता पिंजड़े से उड़ गया । हीरामन जंगल में पहुंचा तो वहाँ अन्य पक्षियों ने उसका सम्मान किया । वह उन्हीं के साथ रहने लगा ।

एक दिन वहाँ व्याध ने आकर अपना जाल फैलाया और अन्य पक्षियों के साथ हीरामन भी उसमें फँस गया । व्याध उसे अपने झाबे में रखकर बेचने के लिए ले गया ।

(६) *रत्नसेन जन्म-खंड* : चित्तौड़ का राजा चित्रसेन था ! उसके रत्नसेन नामक पुत्र हुआ । रत्नसेन के सौभाग्य का वर्णन मुक्त कण्ठ से ज्योतिषियों ने किया। ज्योतिषियों ने यह भी बतलाया कि यह पद्मावती से विवाह करेगा और योग्य बनकर सिंहल द्वीप जाएगा :

सिंघलदीप जाइ यह पावै । सिद्ध होइ चित उर लेइ आवै ॥
भोग भोज जस माना, बिक्रम साका कीन्ह ।
परखि सो रतन पारखी, सूबै लखन लिखि दीन्ह ॥

(७) *बनिजारा खंड* : चित्तौड़ का एक बनिजारा व्यापार करने के लिए सिंघल द्वीप गया। इस बनिजारे के साथ एक गरीब ब्राह्मण भी किसी से कुछ रुपया उधार लेकर गया। सिंघलद्वीप के बाजारों में उस ब्राह्मण को सभी चीजें ऊँचे दामों की मिलीं । वह निराश हो गया कि आखिर वहाँ से क्या खरीद करे। इसी समय व्याध हीरामन तोते को लेकर वहाँ पहुँच गया ब्राह्मण तोते के स्वर्णवर्ण को देखकर उस पर लालायित हो उठा। पंडित ने तोते से पूछा :

"दहुँ-गुनवंत, कि निरगुन छूछा ।"

इस पर तोते ने उत्तर दिया :

"हौं बाम्हन और पंडित, कछु आपन गुन सोइ ।
पढ़े के आगे जो पढ़ै, दून लाभ तेहि होइ ॥"

पंडित ने तोते को खरीद लिया और फिर वह अपने साथियों के साथ मिलकर चित्तौड़ की ओर चल पड़ा । जब वह चित्तौड़ पहुँचा तो चित्रसेन का देहावसान हो चुका था और रत्नसेन गद्दी पर बैठ गया था। रत्नसेन ने सुना कि सिंघलद्वीप से बनिजारे आये हैं और उनमें एक ब्राह्मण एक तोता लाया है, राजा की आज्ञा से ब्राह्मण तोते को लेकर राजा के सामने पेश हुआ। राजा ने तोते से उसका गुण पूछा तो वह बोला :

गुनी न कोई आप सराहा, जो बिकाइ, गुन कहा सो चाहा ॥
जौ लगि गुन परगट नहिं होई, तौ लहि मरम न जानै कोई ॥
चतुर वेद हौं पंडित, हीरा मन मोहिं नावँ ।
पदमावति सौं, द्वेखौं सेव करौं तेहि ठावँ ॥

राजा रत्नसेन ने जब यह सुना तो उन्होंने हीरामन तोते को मोल ले लिया।

(८) *नागमती सुआ संवाद* : तोता राजा के पास रहकर उसे पद्मावती की ओर आकर्षित करता था तो रत्नसेन की रानी नागमती के मन में उससे जलन पैदा होती थी। एक दिन जब राजा रत्नसेन शिकार खेलने गये थे तो नागमती हीरामन के सामने शृंगार करके आई और उससे पूछा :

बोलहु सुआ पियारे नाँहा। मोरे रूप कोइ है जग माँहा॥
हँसत सुआ पहँ आइ सो नारी। दीन्ह कसौटी ओपनिवारी॥
सुआ बानि कसि कछु कस सोना। सिंघल दीप तोर कस लोना॥
कौन रूप तोरी रूपमनी। दहुँ हौं लोनि कि वै पदमिनी॥

यह सुनकर तोता कितना स्पष्ट उत्तर देता है :

सुमिरि रूप पद्मावति केरा। हँसा सुआ, रानी मुख हेरा॥
जेहि सरवर महँ-हंस न आवा। बगुला तेहि सर हँस कहावा॥

× × ×

का पूछहु सिंघल कै नारी। दिनहिं न पूजै निसि अँधियारी॥
पुहुप सुवास सो तिन्ह कै काया। जहाँ माथ का बरनौं पाया॥

तोते के ये शब्द नागमती के जखम पर नमक की तरह लगे। उसे चिंता हुई कि यदि इसने यही बात राजा से कही तो वह पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए हो सकता है कि वह सिंहल की ओर रवाना हो जायँ। उसने चिढ़कर अपनी धाय से तोते को मार डालने के लिए कहा, धाय तोते को ले तो गई परन्तु, यह जानकर कि वह राजा का प्रिय है, उसे मारा नहीं। रत्नसेन ने शिकार से लौटने पर तोते की खोज की। नागमती ने पूरा वृतांत कह सुनाया। राजा को इस पर क्रोधित होते देखकर धाय तुरन्त तोता को ले आई और तोता राजा को दे दिया।

(९) *राजा सूआ संवाद खंड* : इस खण्ड में राजा रत्नसेन तोते से नागमती की सच्ची बात पूछता है और तोता बात बतलाकर गंधर्वसेन का परिचय देता है। साथ ही उसकी अत्यन्त सुन्दरी पद्मावती के रूप का भी वर्णन करता है :

उअत सूर जस देखिय। चाँद छपै तेहि धूप।
ऐसे सबै जाहिं छपि। पद्मावति के रूप॥

पद्मावती के रूप का वर्णन सुनकर राजा रत्नसेन के मन में प्रेम जाग्रत हो जाता है और तोते को पद्मावती का नख-सिख वर्णन करने का आदेश देते हैं :

जस अनूप, तु बरनेसि, नख सिख बरनु सिंगार।
है मोहिं आस मिलै कै, जौ मेरवै करतार॥

(१०) *नख शिख खण्ड* : इस खंड में तोता पद्मावती का नख-शिख वर्णन करता है। वर्णन प्रारम्भ करते ही कहता है :

का सिंगार ओहि बरनौं, राजा, ओहिक सिंगार ओहि पे छाजा ॥

इसी प्रकार पूरा नख शिख वर्णन कर देने के पश्चात् कहता है :

बरनि सिगार न जानेउँ नख सिख जैस अभोग ।
तस जग किछुइ न पाएउँ उपमा देउँ ओहि जोग ॥

(११) *प्रेम खण्ड* : पद्मावति के रूप का वर्णन तोते को सुनकर राजा मुरझा कर प्रेम विह्वल हो गया। ~~राजा~~ अचेत हो गया और उसके मुख से 'त्राहि त्राहि' शब्द निकलने लगे। राजा के सभी कुटुम्बी और प्रियजनों ने देखा परन्तु किसी की समझ काम न दे सकी। जब राजा सचेत हुआ तो उसके नेत्रों से अश्रु धारा बह रही थी। वह बोला "मैं तो अमरपुर में था, मैं यहाँ मरनपुर में कहाँ से आ गया है" तब हीरामन तोते ने उसे समझाया और कहा "राजन ! हृदय में धैर्य धारण करो। प्रेम करना हँसी खेल नहीं है। प्रीत करना अत्यन्त कठिन है। सिंहल का पथ बड़ा दुर्लभ है। वहाँ तक जोगी और सन्यासी ही जा सकते हैं। तुम भोगी व्यक्ति हो, तुम्हारा पहुँचना कठिन है :

तुम राजा औ सुखिया, करहु राज सुख भोग।
एहि रे पंथ सो पहुँचै, सहै जो दुःख वियोग॥

राजा रत्नसेन यहीं से वैरागी हो जाते हैं। और राजपाट त्याग कर सिंघल की दिशा में चलने के लिए दृढ़ व्रत होते हैं उनपर अब किसी के कहने या समझाने का असर नहीं होता :

बंधु मीत बहुतै समझावा। मान न राजा कोउ भुलावा।

(१२) *जोगी-खण्ड* : राजा रत्नसेन जोगी होकर चल पड़ा। राजसी वस्त्र को त्याग कर देह पर भस्म रमाली। मेखला, सिंघी, चक्र इत्यादि धारण कर लिए। प्रेम-पंथ पर इस प्रकार राजा चल दिया। और उसने ज्योतिषी की बात नहीं सुनी। चलते समय माता विलाप करती है घर में अन्धकार छा जाता है।

रोवत माय, नबहुरत न बारा। रतन चला, घर भा अँधियारा ॥

नागमति और सारा रनिवास रो रहा है परन्तु रत्नसेन पर उसका कोई प्रभाव नहीं होता। वह सबको छोड़ कर चल देता है :

कहा न मानै राजा, तजी सबाई भीर।
चला छाँड़ि कै रोवत, फिरि कै दई न धीर॥

सुआ, राजा रत्नसेन और उसके साथी जोगियों का अगुआ था। जब ये चलते-चलते ऐसे स्थान पर पहुँचे कि जहाँ से मार्ग दो दिशाओं को फँटता था। तो तोते ने मार्ग दिखाया। उसने बतलाया कि एक मार्ग लंका के लिए है और दूसरा सिंघल द्वीप के लिए। राजा रत्नसेन के नेत्र अब उसी मार्ग पर लग गये जो सिंघल द्वीप को जाता था और जहाँ पद्मावती रहती थी :

नैन लाग तेहि मारग पदमावति जेहि दीप।
जैस सेवातिहि सेवै बन चातक, जल सीप॥

(१३) *राजा-गजपति-संवाद-खण्ड* : एक महीने की यात्रा के पश्चात् रत्नसेन अपने साथियों के साथ समुद्र-तट पर पहुंचा। वहाँ इनकी भेंट राजा गजपति से हुई। जब उसे सूचना मिली कि योगी रत्नसेन उस ओर आ रहे हैं तो वह उनसे भेंट करने के लिए पहुँच गया। गजपति ने कहा, "तुमने दर्शन देकर मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया। बोला अब मेरे योग्य सेवा कहिए।" इस पर राजा रत्नसेन बोले :

है बहुत जौ बोहित पावौं। तुम्ह तैं सिंघल दी सिधावौं॥

इस पर गजपति बोले, "योगिराज! मैं जहाजों का तो प्रबन्ध कर दूँगा परन्तु मार्ग बड़ा भयंकर है। आप कैसे जा सकेंगे।"

रत्नसेन ने उत्तर दिया कि प्रेम-मार्ग पर चलने वाले भयंकरता से नहीं डरते। मैं तो अपने लक्ष्य की ओर जा रहा हूँ यदि समुद्र में किसी ने मुझे खा भी लिया तो तब भी मेरा निस्तार ही होगा। मेरी दशा तो आज ऐसी है :

सरग सीस,घर धरती, हिया सो प्रेम-समुंद।
नैन कौड़िय होइ हेर, लेइ लेइ उठहिं सो बुंद॥

(१४) *बोहित खण्ड* : गजपति ने रत्नसेन के लिए जहाजों का प्रबन्ध कर दिया और वह उन पर बैठकर अपने साथियों के साथ सिंघल द्वीप की ओर चल पड़ा। यह जहाजी बेड़ा इतना बड़ा था कि सारा समुद्र उनसे पट गया। ये जहाज एक पल भर में सहस्रों कोस की रफतार से चलने वाले थे। चलते समय राजा रत्नसेन के सभी साथी दृढ़ प्रतिज्ञ थे :

गुरु हमार तुम राजा, हम चेला तुम नाथ।
जहाँ पाँव गुरु राखै, चेला राखै माथ॥

(१५) *सात समुद्र खण्ड* : रत्नसेन का जहाजी बेड़ा पहले खारे समुद्र में उतरा, इस समुद्र में लहरें बहुत थीं। फिर वह खीर समुद्र में घुसा तो उसमें हीरा मोती भरे पड़े थे। फिर ये दधि-समुद्र में पहुँचे तो वह दही के समान जमा हुआ था। दधि-समुद्र से निकलकर उदधि समुद्र प्रवेश किया। इस समुद्र में आग की लपटें थीं। यहाँ से निकल कर कर सुरा-समुद्र में पहुंचे। जो कोई भी उसका जल पीता वही बेहोश हो जाता था। सुरा-समुद्र से निकल कर यह बेड़ा किल-किल समुद्रमें पहुँचा इस समुद्र,बड़ी उथल-पुथल थी और विकराल लहरें उठ रहीं थीं। हीरामन तोते ने राजा को ज्ञान दिया और कहा कि इसी समुद्र में आकर सत डोल जाता है :

हीरामन राजा सौं बोला। एही स अमुदाए सत डोला।
सिंहल दीप जो नाहिं निबाहू। एही ठाँव साँकर सब काहू॥

परन्तु राजा रत्नसेन का सत नहीं डोला और उन्होंने दृढ़ता पूर्वक धैर्य के साथ उत्तर दिया कि मैंने तो अपना बेड़ा प्रेम-समुद्र में डाल दिया है फिर किल किल समुद्र की मैं क्या चिंता करूंगा, क्योंकि यह तो उसके सामने एक बूंद के समान है :

प्रेम-समद्र महँ बाँधा बेरा। यह सब समुद बूँद जेहि केरा॥

रत्नसेन ने अपना बेड़ा निर्द्वन्द होकर उस समुद्र में छोड़ दिया। सब जहाज एक दूसरे से पृथक-पृथक हो गए थे और सबको अपनी-अपनी पड़ गई :

कान समुद धंसि लीहेन्सि, भा पाछे सब कोइ।
कोइ काहू न सँभारै, आपनि आपनि होइ॥

इसके पश्चात् मानसर समुद्र में प्रवेश किया, जहाँ का जल बिल्कुल शांत था। वहाँ जाकर बेड़े के अन्य जहाज भी आगे पीछे मिल गये :

कोइ दिन मिला सबेरे, कोइ आवा पछ-राति।
जाकर जस जस साजु हुत, सो उतरा तेहि भाँति॥

(१६) *सिंहलद्वीप-खण्ड:* मानसर समुद्र को पार कर बेड़ा सिंघलद्वीप के पास पहुँचा। वहीं तोते ने राजा रत्नसेन को सिंहल-गढ़ दिखलाया। वही पद्मावती का निवास स्थान था। उसने बतलाया कि पद्मावती के पास न तो कोई भौंरा ही जा सकता है और न कोई पक्षी ही। तोता बोला :

तहाँ देखु पद्मावति रामा। भौंर न जाई, न पंखी नामा॥
अब तोहि देऊँ सिद्धि एक जोगू। पहिले दरस, होइ तब भोगू॥

हीरामन ने फिर रत्नसेन को सोने का सुमेरु पर्वत दिखलाया और कहा कि वहाँ पर महादेव का मण्डप है। माघमासको श्रीपंचमी को वहाँ लोग पूजा के लिए आते हैं। उसी समय पद्मावती भी पूजा के लिए आयेगी। तभी तुम उसके दर्शन कर सकोगे। राजा महादेव के मण्डप में चला गया और हीरामन तोता पद्मावती के पास पहुँचा।

(१७) *मण्डप गमन-खण्ड:* राजा रत्नसेन अपने तीस हजार चेलों को लेकर महादेव के मण्डप में रहने लगा। वहीं पर उसने पद्मावती की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। यहाँ उसने सिंघछाला पर बैठकर पद्मावती का जाप किया :

बैठ सिंघछाला होइ तपा। 'पद्मावति पद्मावति' जपा।

(१८) *पद्मावती वियोग-खण्ड:* राजा रत्नसेन ने जब यहाँ पद्मावती की प्राप्ति के लिए अखण्ड जाप किया तो उसका प्रभाव पद्मावती पर भी हुआ और उसके अंदर भी प्रेमांकुर उगने लगा। रात दिन उसे रत्नसेन की याद आने लगी। अब वह अकेली नहीं रह सकती थी। उसने अपनी धाय से कहा :

दहै, धाय! जोबन एहि जीऊ। जोनहु परा अगनि महँ घीऊ॥
करबत सहौं होत दुइ आधा। सहि न जाइ जोबन कै दाधा॥

रोंव-रोंव जनु लागहिं चाँटे। सूत-सूत बेधहिं जनु काँटे।
दगधि कराह जरै जस घीऊ। बेगि न आव मलयगिरि पीऊ॥

(१९) *पद्मावती सुआ भेट खण्ड* : इसी वियोगावस्था में हीरामन तोता पद्मावती के पास आता है। हीरामन तोते को देखकर पद्मावती को प्रतीत हुआ कि मानो उसके जाते हुए प्राण लौट आए। रानी ने तोते को गले से लगाया और रोकर उसका कुशल पूछा। तोते ने अपनी पूरी कहानी पद्मावती को सुनाई, पिंजड़े से उड़ने के पश्चात किस प्रकार वह अन्य जानवरों में मिला, फिर व्याध द्वारा पकड़ा जाकर एक चित्तौड़ गढ़ के ब्राह्मण के हाथ बिका, ब्राह्मण उसे जम्बू द्वीप ले गया। वहाँ चित्तौड़ गढ़ में राजा रत्नसेन राज्य करता था। फिर तोते ने जम्बूद्वीप तथा रत्नसेन का वर्णन किया। रत्नसेन द्वारा अपने मोल लिए जाने और पद्मावती के रूप वर्णन की भी फिर पूरी कथा कह सुनाई। और फिर बतलाया कि किस प्रकार पद्मावती का रूप वर्णन सुनकर रत्नसेन प्रेम-भगी बन गया। वह सोलह हजार चेलों के साथ सिंहलद्वीप आया है। यह भी सूचना उसने पद्मावती को दी और महादेव के मण्डप में उसी के लिए पूजा कर रहा है। यह सुनकर पद्मावती के मन में अभिमान हुआ। उसने जोगी से प्रेम करना अपमान समझा। परन्तु हीरामन तोते ने रानी से फिर कहा, "रानी तुम्हारे विरह में रत्नसेन ने अपने कंचन जैसे शरीर को भस्म कर दिया" यह सुन रानी के मन में प्रेम और शरीर में काम उत्पन्न हुआ:

सुनि कै धनि, 'जारी अस काया'। मन भा मयन, हिये भै माया॥
देखों जाइ जरै कस भानू। कंचन जरै अधिक होइ बानू॥
अब जौं मरे वह प्रेम-वियोगी। हत्या मोहि, जेहिं कारण जोगी॥
सुनि कै रतन पदारथ राता। हीरामन सौं कह यह बाता॥
जौं वह जोग सँभारै छाला। पाइहि भुगति, देहुँ जयमाला॥

(२०) *वसंत-खण्ड* : बसन्त की श्रीपञ्चमी को पद्मावती महादेव की पूजा के लिए सखियों के साथ महादेव के मण्डप में गई। महादेव की पूजा करते हुए पद्मावती ने कहा कि मेरी सब सखियों को वर मिल गये परन्तु मुझे अभी नहीं मिला। आप मेरी यह इच्छा पूर्ण करें:

बर सौं योग मोहि मेरवहु, कलस जाति हौं मान।
जेहि दिन हींछा पूजै बेगि चढ़ावहुँ आनि॥

इसी समय एक सखी आकर कहती है:

पूरुब द्वार गढ़ जोगी छाए। न जनौ कौन देश तें आए॥
उन महँ एक गुरु जो कहावा। जनु गुड़ देइ काहू बौरावा॥
कुँवर बतीसौं लच्छन राता। दसएँ लछन कहै एक बाता॥
जानौं अह गोपीचंद जोगी। की सो आहि भरथरी बियोगी॥

रानी यह सुनकर उधर जाती है परन्तु उसे देखते ही राजा अचेत हो जाता है। पद्मावती ने उसके शरीर पर चन्दन का लेप किया। राजा एक क्षण के लिए जागा परन्तु फिर गहरी नीन्द में सो गया। तब रानी ने उसके हृदय पर चन्दन से लिखा :

जब चंदन आखर हिय लिखे। भीख लेइ तुइ जोग न सिखे ॥
घरी आइ तब गाँ तू सोई। कैसे भुगति परापति होई ॥

यह लिखकर पद्मावती चली आई। रात्रि में उसने स्वप्न में देखा चन्द्रमा पूर्व से उदय हुआ है और सूर्य पश्चिम से और फिर दोनों एक दूसरे के पास चले आये तथा दोनों का मेल हो गया। उसने देखा कि हनुमान ने लङ्का लूट ली। जागने पर अपनी सखियों से उसने अपने स्वप्न का अर्थ पूछा। सखियों ने बतलाया इसका अर्थ यही है कि तुम्हें वर मिलने वाला है:

सुख सुहाग जो तुम्ह कहँ पान फूल रस भोग।
आज कालिह भा चाहै, अस सपने क सँजोग।

(२१) *राजा रत्नसेन-सती खण्ड:* पद्मावती के चले जाने पर रत्नसेन की निद्रा टूटी। पद्मावती को गया हुआ जान वह रोया और उसने निश्चय किया कि वह जल कर प्राण-त्याग कर दे :

आइ जो प्रीतम फिरिगा, मिला न आइ बसंत।
अब तन होरी बाजि कै, जारि करौं भसमंत ॥

(२२) *पार्वती महेश-खण्ड:* जब रत्नसेन ने जल कर मरने का निश्चय किया तो उसी समय वहाँ पार्वती और महादेव जी पहुँचे। चिता बनी देखकर उन्होंने रत्नसेन से आत्महत्या का कारण पूछा! रत्नसेन ने संक्षेप में अपनी गाथा सुना दी। उसे सुनकर पार्वती का हृदय दया से पूर्ण हो गया। पार्वती अप्सरा जैसा रूप धारण कर बोली, "राजकुमार! मेरे जैसी सुन्दरी अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती। पद्मावती गयी तो क्या हुआ। इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम्हें तो अप्सरा मिल गई।" इस पर रत्नसेन ने इंकार कर दिया और अपना दृढ़ प्रेम केवल पद्मावती में ही बतलाया। तब महादेव ने गौरी से कहा कि रत्नसेन का प्रेम बहुत गहरा है। और तुम इसकी रक्षा करो। रत्नसेन महादेव के असली रूप को पहचान कर रोने लगा तो महादेव ने उसे धैर्य बँधाया। महादेव बोले 'रोओ नहीं'। यह गढ़ तुम्हारे शरीर के समान ही दस पौड़ियों का है। दसवें द्वार तक इसमें चढ़ना होगा। जो दृष्टि को उलट कर लगाता है वही वहाँ पहुँच पाता है।

(२३) *राजा गढ़ छेंका खंड :* महादेव से यह सिद्धि गुटका प्राप्त कर रत्नसेन अपने साथियों को लेकर महल में घुस पड़ा। जब राजा गंधर्वसेन को इसकी सूचना मिली तो उसने अपने नौकरों को भेजा। रत्नसेन ने नौकरों से कहा कि वह राजा की कन्या

पद्मावती का भिखारी है। उसे पाकर वह तुरन्त लौट सकता है। नौकरों ने यही बात जाकर गंधर्वसेन से वह सुनाई। यह सुनकर गंधर्वसेन को बहुत क्रोध आया।

रत्नसेन उत्तर की प्रतीक्षा में था। ~~उसने~~ एक पत्र हीरामन तोते के हाथ पद्मावती ने अपने दृढ़ प्रेम का संदेश उत्तर में दिया। यह संदेश पाकर रत्नसेन का हृदय प्रफुल्लित हो उठा।

(२४) *गंधर्वसेन मंत्री खंड* : गंर्वबसेन ने अपने मंत्रियों से परामर्श किया। रत्नसेन को सबने बन्दी कर लेने की सलाह दी और वह बन्दी बना लिया गया। यह सूचना पाकर पद्मावती बहुत दुःखी हुई। एक बार तो वह अचेत ही हो गई। हीरामन तोता वहाँ लाया गया। तोते की आवाज सुनकर उसे होश आया। तब पद्मावती ने एक संदेशा रत्नसेन के पास भेजा :

कहो जाइ अब मोर सँदेसू। तजौ जोग अब होइ नरेसू॥
जिनि जानहु हौं तुम सौं दूरी। नैनन माँझ गड़ी वह सूरी॥

(२५) *रत्तसेन सूली खंड* : रत्नसेन को बन्दी बनाकर गंधर्वसेन के सामने लाया गया। गंधर्व सेन के पूछने पर भी रत्नसेन ने साफ-साफ वही बात कही, जो उसके मन में थी। इसे सुनकर महादेव का आसन डगमगा उठा। भाट भाटि का रूप धारण कर महादेव पार्वती वहाँ आ पहुँचे। रत्नसेन आसन जमाए 'पदमावती पदमावती का जाप कर रहा था। इसी समय हीरामन तोते ने पद्मावती का संदेश रत्नसेन को दिया। महादेव भी आगे बढ़े और उन्होंने राजा गंधर्वसेन को समझाया तथा रत्नसेन का ठीक ठीक परिचय भी दिया। हीरामन ने इसकी साक्षी दी। तब विवाह का निश्चय कर रत्नसेन का तिलक किया गया।

(२६) *रत्नसेन पद्मावती-विवाह-खंड* : निश्चित होने पर लग्न रखी गई और विवाह की तैय्यारियाँ प्रारम्भ हुईं। रत्नसेन के लिए सुन्दर वस्त्रों का आयोजन हुआ और बारात सजकर चली। पद्मावती ने महल पर खड़े होकर बारात देखी इसे देखकर वह ऐसी प्रसन्न हुई कि प्रसन्नता में मूर्छित होकर गिर पड़ी :

अंग अंग सब हुलसे, कोइ कतहूँ न समाइ।
ठावहिं ठाँव बिमोही, गई मुरछा तनु आइ॥

मूर्छित अवस्था में सखियों ने उसे सँभाला और थोड़ी देर में वह होश में आई। ठाट बाट के साथ दावत हुई और फिर पद्मावती का रत्नसेन से विवाह हुआ फिर और भांति भाँति की दहेज दी गई...

भई भाँवरि, नेवछावरि, राज चार सब कीन्ह।
दायज कहौं कहाँ लगि ? लिखि न जाइ जत दीन्ह॥

(२७) *पद्मावती रत्नसेन भेट-खंड* : कवि वर्णन करता है :

सात खंड ऊपर कविलासू। तहवाँ नारि-सेज सुख बासू॥

रत्नसेन से पद्मावती की सखियाँ उसे गाँठ खोल कर अलग लेगई। संध्या को एक सखी ने रत्नसेन के सामने आकर योग का मजाक उड़ाया परन्तु राजा ने परिहास का उत्तर परिहास में न दिया और वातावरण गम्भीर हो गया। इसी बीच में पद्मावती वहाँ आगई। पद्मावती और रत्नसेन ने केलि-क्रीड़ा में रात व्यतीत की।

पुहुप सिंगार सँवार सब जोबन नवल बसंत।
अरगज जिमि हिय लाइ कै मरगज कीन्हेउ कन्त॥

पद्मिनी भोग विलास में रत्नसेन से कहती हैं।

जो तुम चाहौ सो करौ, ना जानौ भल मंद।
जो भावै सो होइ मोहि तुम्ह, पिउ ! चाहौ आनन्द॥

(२८) *रत्नसेन साथी खण्ड*··· सवेरे रत्नसेन अपने साथियों से मिले। उन्हें उन्होंने सोलह हजार पद्मिनी स्त्रियाँ दिखलाईं। वे सब भी उनके साथ सुखभोग से रहने लगे :

सोरह सहस पदमिनी माँगो, सबै दीन्हि, नहीं काहुहि खाँगी।
सबकर मंदिर सोने साजा। सब अपने-अपने घर राजा॥

(२९) *षट् ऋतु वर्णन खंड* : इस खंड में यही वर्णित है कि पद्मावती ने किस प्रकार सुख से रत्नसेन के साथ छहों ऋतुएँ आनन्द और भोग विलास के साथ व्यतीत कीं :

हँसा केलि करहिं जिमि, खंड़हिं कुरलकिं दोउ।
पीउ पुकारि कै पारमा, जस चकई क बिछोउ॥

(३०) *नागमती वियोग खण्ड* : रत्नसेन तो इधर पदमावती के साथ भोग विलास में दिन व्यतित कर रहा था और उधर नागमती के दिन विरह में बड़ी ही कठिनाई के साथ व्यतीत हो रहे थे। वह चित्तौड़ आने के रास्ते पर नजर गड़ाये बैठी थी परन्तु रत्नसेन कहीं आता हुआ दिखलाई नहीं दे रहा था। उसने रानी की तरह रहना छोड़कर एक सामान्य स्त्री के समान रहना प्रारम्भ कर दिया था। रात दिन वह रोती ही रहती थी। रोते रोते ही उसने बारह महीने बिता दिए।

नागमती बिरहातुर होकर गाती है :

बिरह-हस्ति तन सालै, धाय करै चित चूर।
बेगि आइ, पिउ ! बाजहु, गाजहु होई सदूर॥

× × × ×

जिन घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्व।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व॥

× × × ×

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन उडाव'।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाव॥

नागमती का विरह इतना तीक्ष्ण था कि जिस पक्षी अथवा वृक्ष के पास भी जाकर वह अपनी विरह गाथा कहती थी वही जलने लगता था :

जेहि पंखी के निअर होइ, कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाई जरि, तरिवर होइ निपात॥

(३१) *नागमती-संदेश-खंड* : नागमती अपने विरह में रोती फिर रही थी। एक दिन एक पक्षी को उसकी दशा देखकर रहम आ गया। पक्षी ने नागमती से उसके रोने का कारण पूछा। नागमती ने उसे अपनी विरह-गाथा सुनाई और अपना संदेश रत्नसेन के पास ले जाने के लिए कहा। नागमती रत्नसेन के विशुद्ध प्रेम में पक्षी से कहती है कि वह पद्मावती से जाकर कहे :

हमहुँ बियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु, पर-जोऊ॥
अबहुँ मया करु, करु जिउ फेरा। मोहिं जियाउ कंत देइ फेरा॥
मोहिं भोग सौं काज न बारी। सौंह दीठि कै चाहन हारी॥
सवति न होहि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर, तोर पाँय मोर माथ॥

नागमती पक्षी से कहती है कि उसकी माता भी उसके वियोग में बहुत दुखी हुई। उसके तुम ही 'श्रवणकुमार' थे। और तुम्हारी ही रट लगाकर उसने प्राण दे दिये।

पक्षी नागमती का यह संदेश लेकर उड़ चला। वह ज्यों ही सिंघलद्वीप में पहुँचा वहाँ भी विरह की ज्वाल उठने लगी। इस ज्वाला के मारे सब पक्षी समुद्र-तीर के वृक्षों पर जा बैठे। यह पक्षी जिस पेड़ के ऊपर जाकर बैठा, रत्नसेन भी शिकार से लौटकर उसी के नीचे ठहर गया। इस पक्षी ने अन्य पक्षियों को अपना परिचय दिया और नागमती की विरह-कथा उन पक्षियों को सुनाई। रत्नसेन ने भी यह कथा सुनी और फिर पक्षी से सब बातें पूछीं। पक्षी नागमती की कथा सुनाकर उड़ गया और फिर रत्नसेन के बुलाने पर भी नहीं लौटा।

इस प्रकार रत्नसेन को चित्तौड़ की याद आई। एक वर्ष तक वह चित्तौड़ को भूला ही रहा। उसी समय से रत्नसेन उदास रहने लगा। राजा गंधर्वसेन से ने उसकी उदासीनता देखकर प्यार से कहा :

मैं तुम्हही जिउ लावा, दीन्ह नैन महं बास।
जौ तुम होहु उदास तौ, यह काकर कबिलास॥

(३२) *रत्नसेन-बिदाई-खंड* : बिदा होते समय गंधर्वसेन से रत्नसेन कहता है कि आपने मुझे काँच से कंचन बना दिया। मैं आपका कृतज्ञ हूँ परन्तु अब मेरे लिये यहाँ

ठहरना असम्भव है। परेवे ने पत्र दिया है कि मेरा भाई मेरा राज छीन लेना चाहता है और उधर दिल्ली नरेश भी आक्रमण करने की सोच रहा है। इसीलिए आज मैं विदा चाहता हूँ। राजा गंधर्वसेन को रत्नसेन की बात माननी पड़ी और उसने शुभ मुहूर्त देखकर उसे विदा किया। चलते समय गंधर्वसेन ने रत्नसेन को बहुत सी दान दहेज दी और इस प्रकार रत्नसेन ने पद्मावती के साथ जम्बू द्वीप की ओर प्रस्थान किया।

रत्नसेन को गंधर्वसेन ने इतनी दहेज दी कि उसे अभिमान हो गया :

देखि दरब राजा गरबाना, दिस्टि माहँ कोई और न आना।

जो मैं होहुँ समुद के पारा, को है मोहि सरिस संसारा॥

(३३) देश *यात्रा-खंड* : इस प्रकार पद्मावती और द्रव्य को लेकर रत्नसेन अपने देश की ओर चल दिया। अभी उसका जहाज आधा भी रास्ता तय नहीं कर पाया था कि एक बड़ा भारी तूफान आया। तूफान में जहाज रास्ता खो बैठे। मछलियों का शिकार खेलते हुए वहाँ एक राक्षस आ पहुँचा, तो रत्नसेन ने उससे अपने जहाज को ठीक मार्ग पर लगा देने की प्रार्थना की परन्तु राक्षस कपट से रत्नसेन के जहाज को एक गहरे और भंवरोंवाले समुद्र में ले गया। इसी समय एक राज-पक्षी वहाँ उड़कर आया और राक्षस की यह हरकत देखकर वह उसपर टूट पड़ा और उसे ले उड़ा। तब कहीं जाकर समुद्र के भंवर समाप्त हुए। परन्तु वहाँ जाकर रत्नसेन का जहाज टूट गया। राजा रत्नसेन और पदमावती दोनों जहाज के दो टूटे हुए टुकड़ों पर बहकर एक दूसरे से पृथक हो गये :

बोहित टूक टूक सब भए। एहू न जाना कहुँ चलि गए॥

भए राजा रानी दुइ पाटा। दूनौं बहे, चले दुइ बाटा॥

काया जिउ मिलाइ कै, मारि किए दुइ खंड।

तन रोवै धरती परा, जीउ चला बरम्हंड॥

(३४) पद्मावती जिस जहाज के टुकड़े पर बैठी थी वह किनारे जाकर लगा। वहाँ समुद्र की बेटी लच्छमी खेल रही थी पदमावती को देखकर वह उसके पास गई और उसे चेतन अवस्था में लाई। चेतन अवस्था में आकर उसने लच्छमी से पूछा कि वह कहाँ है और उसका पति रत्नसेन कहाँ है। लच्छमी रत्नसेन के विषय में कुछ न जानती थी परन्तु उसने पद्मावती को आश्वासन दिया कि वह रत्नसेन को ढुंढ़वा लेगी। लच्छमी फिर समुद्र के किनारे पर चली गई जहाँ रत्नसेन का भी जहाज का टुकड़ा आया। रत्नसेन के पूछने पर लच्छमी ने अपने को पदमावती बतलाया। लच्छमी कहती है :

हौं रानी पद्मावति, रतनसेन तू पीउ।

आनि समुद महं छाँड़िहु, अब रोवौं देइ जीउ॥

इस पर रत्नसेन कहता है :

हौं ओहि बास जीउ बलि देउँ। और फूल कै बास न लेउँ॥

× × × ×

लेइ सो आइ पद्मावति पासा। पानि पियावा मरत पियासा ॥

इस प्रकार रत्नसेन और पदमावती का लक्ष्मी ने दुबारा मेल कराया :

पाय परी धनि पीउ के, नैन्ह सौं रज मेट।
अचरज भएउ सबन्ह कहँ, भइ ससि कवलहि भेंट ॥

यहाँ लक्ष्मी के घर रत्नसेन और पद्मावती दस दिन तक पाहुने बनकर रहे और लक्ष्मी ने पद्मावती को अपनी बेटी कहा :

औ तेहि कहा मोर 'मोरि तू बेटी' ॥

यहाँ से फिर ये जगन्नाथ होते हुए अपनी राजधानी की तरफ लौटे।

(३५) राजा रत्नसेन चित्तौड़ के पास पहुँचे और नागमती को सूचना मिली तो वह :

नागमती कहँ अगम जनावा। गई तपति बरसा जनु आवा ॥

× × × ×

पूछहिं सखी सहेलरी, हिरदय दे अनंद।
आजु बदन तोर निरमल, अहै उवा जस चंद ॥

परन्तु उसी क्षण पदमावती का आना सुनकर नागमती की दशा बदल गई :

पदमावति कर आव बेवानू। नागमती जिउ में भा आनू ॥
जनहुँ छाँह महुँ धूप देखाई। तैसइ झार लागि जौ आई ॥
सही न जइ सवति के झारा। दुसरे मंदिर दीन्ह उतारा ॥

पद्मावती का दूसरे महल में उतारा गया। रत्नसेन दिन भर दान पुण्य करता रहा और रात्रि में जाकर नागमती से मिला। नागमती का सूखा हुआ जीवन फिर एक बार लहलहा उठा। रत्नसेन ने :

कंठ लाइ कै नारि मनाई। जरी जो बेलि सींच पलुआई ॥

(३६) *नागमती पद्मावती-विवाद खंड* : यहाँ नागमती की प्रसन्नता से पद्मावती के मन में जलन पैदा हुई। एक दिन दोनों में लड़ाई ठन गई और हाथा पाई तक नौबत आ गई। राजा रत्नसेन यह सुनकर वहाँ पहुंचे और दोनों को समझाया :

गंग जमुन तुम नारि दोउ, लिखा मुहम्मद जोग।
सेव करहु मिलि दूनौं, तौ मानहु सुख भोग ॥
असि कहि दूनौं नारि मनाई। बिहँसि दोउ तब कंठ लगाई ॥

दोनों रानियाँ प्रसन्न हो गईं।

(३७) *रत्नसेन संतति खण्ड* : पद्मावती के पद्मसेन और नागमती के नागसेन पुत्रों की उत्पत्ति हुई। ज्योतिषियों ने बतलाया कि दोनों ही बड़े भाग्यवान हैं।

(३८) *राघवचेतन देश निकाला खण्ड* : रत्नसेन के दरबार में राघव चेतन नाम का एक पंडित था। इसे यक्षिणी इष्ट थी। एक दिन राजा ने उससे पूछा कि दूज

किस दिन की है। पंडित के मुख से निकला 'आज'। और पंडितों ने इसका विरोध किया क्यों कि उस दिन अमावस थी। रात्रि को तो पंडित ने यक्षिणी के प्रयोग से राजा को चन्द्रमा दिखला दिया परन्तु फिर दूसरे दिन दूज का चाँद देखकर राजा को पंडित पर बड़ा क्रोध आया और उसने पंडित को राज छोड़ जाने की आज्ञा दी।

राजा की इस आज्ञा का जब पद्मावती को पता चला तो उसे दुःख हुआ कि राजा ने ऐसे गुणी पंडित को राज्य छोड़ जाने की आज्ञा दी। जब वह जाने लगा तो पद्मावती महल के ऊपर झरोखे में आई और उसने अपना कंगन उतारकर पंडित की ओर फेंक दिया। पंडित ने उस ओर देखा तो पद्मावती मुस्करा दी। पंडित उसे देखकर बेहोश हो गया। सखियाँ उसे चेतन अवस्था में लाईं और अन्त में वह कंगन लेकर विदा हो गया।

(३६) राघव चेतन यहाँ से दिल्ली पहुँचा। दिल्ली में उसने अल्लाउद्दीन से भेट की और पद्मिनी के रूप की चर्चा की। राघव चेतन ने बतलाया कि ऐसी स्त्रियाँ सिंघलद्वीप में मिलती हैं। साथ ही उसने बादशाह से कहा कि यदि उनकी आज्ञा हो तो वह स्त्रियों के भेदों का वर्णन करे।

(४०) *स्त्री-भेद-वर्णन-खण्ड*: राघव चेतन ने तब काम शास्त्र के अनुसार हरियानी, शंखिनी, चित्रणी तथा पद्मनी स्त्रियों का वर्णन किया।

(४१) *पद्मनी रूप-चर्चा-खण्ड*. स्त्रियों के भेद वर्णन करने के पश्चात् राघव चेतन पण्डित ने स्त्रियों के नख-शिख का वर्णन किया उसे सुनकर शाह चेतना खो बैठा :

जौ राघव धनि बरनि सुनाई। सुना साह गई मुरछा आई।

जब राजा को चेतना हुई तो उसने राघव चेतन को बहुत-सा धन देकर सम्मानित किया और साथ ही रत्नसेन के पास एक पत्र लिखकर भेजा कि वह पद्मिनी को शीघ्र उसके पास भेज दे :

राजै पत्री बँचावा, लिखी जोकरा अनेग।
सिंघल कै जो पद्मिनी, पठै देहु तेहि बेग।

(४२) *बादशाह चढ़ाई-खण्ड*: जब रत्नसेन ने यह पत्र पढ़ा तो उसे बहुत क्रोध आया और उसने दूत को यों ही वापस कर दिया। दूत अलाउद्दीन के पास पहुँचा तो उसे भी क्रोध आया और उसने अपनी फौज को लेकर चित्तौड़ की ओर कूच कर दिया।

(४३) *राजा-बादशाह युद्ध-खण्ड*: अलाउद्दीन चित्तौड़ पहुँचा और बड़ा घमासान युद्ध हुआ। रत्नसेन के गढ़ पर सौ सौ मन के गोले गिरे परन्तु वह अडिग रहा। उसने अपने भोग विलास को भी नहीं छोड़ा। कई वर्षों तक युद्ध होता रहा। इसी बीच में अलाउद्दीन को पता चला कि दिल्ली पर कोई आक्रमण होने वाला है। इसलिए उसने सन्धि करना उचित समझा।

(४४) *राजा बादशाह मेलखण्ड:* अलाउद्दीन ने रत्नसेन के पास अपना दूत भेजा। सन्धि में निश्चय हुआ कि रत्नसेन पद्मिनी को न दे और चन्देरी भी ले ले परन्तु समुद्र से प्राप्त किये हुए पाँच रत्न अलाउद्दीन को दे दे। यह बात राजा ने स्वीकार कर ली। दूसरे दिन अलाउद्दीन के यहाँ प्रीतिभोज पर गया।

(४५) *बादशाह भोज-खण्ड :* राजा ने अल्लाउद्दीन की दावत में बहुत अच्छे अच्छे व्यंजन बनवाए और सुन्दर दावत की।

(४६) *चित्तौड़गढ़वर्णन-खण्ड* भोजन करने के पश्चात् अलाउद्दीन ने चित्तौड़ गढ़ देखा। देखते देखते वह रनिवास में भी पहुँच गया। वहाँ उसने बहुत सी रूपवान दासियों को देखकर समझा कि उन्हीं में कोई पद्मनी भी है। जब उसने राघवचेतन से पूछा तो उसने बतलाया कि वे सब दासियाँ हैं, पद्मनी उनमें नहीं है।

उधर भोज के बाद गोरा बादल ने रत्नसेन को अलाउद्दीन का विश्वास न करने की सलाह दी परन्तु उसकी बात रत्नसेन ने न मानी। राजा एक जगह बैठ कर बादशाह के साथ शतरंज खेलने लगा। वहीं पर एक दर्पण रखा था जिसमें अलाउद्दीन पद्मावती के प्रतिबिम्ब देखकर अचेत हो गया।

(४७) *रत्नसेन बन्धन-खण्ड* बादशाह को होश आने पर रत्नसेन उसे गढ़ के द्वार तक विदा करने गया। दरवाजे पर पहुँचते ही अलाउद्दीन ने रत्नसेन को बंधवा लिया और गिरफ्तार करके दिल्ली ले गया।

(४८) *रत्नसेन बन्धन-खण्ड:* रत्नसेन के बन्दी हो जाने पर पद्मावती और नागमती ने बहुत घना बिलाप किया।

(४९) *देवपाल दूती-खण्ड:* कुम्भलनेर का राजा देवपाल रत्नसेन से शत्रुता रखता था। जब उसे सूचना मिली कि अलाउद्दीन रत्नसेन को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया तो उसने अपनी एक दूती के द्वारा पद्मनी को फुसलाने का प्रयास किया। परन्तु पद्मावती रत्नसेन से अगाढ़ प्रेम करती थी इसलिए दूती को सफलता न मिली और उलटी अपमानित होकर वहाँ से जाना पड़ा।

(५०) *बादशाह दूती-खण्ड :* बादशाह ने भी पद्मावती को फुसलाने के लिये दूती भेजी परन्तु वह भी असफल रही।

(५१) *पदमावती गोराबादल-संवाद-खण्ड:* पद्मावती ने इस कठिन समय में अपने दो सरदारों गोरा, बादल से सलाह की और उन दोनों ने विश्वास दिलाया कि वे रत्नसेन को छुड़ा लायेंगे।

(५२) *गोरा बादल युद्ध-यात्रा-खण्ड:* बादल इसी दिन गौना करके लाया था। उसकी माँ और पत्नी ने उसे रोका परन्तु उसने एक न सुनी और वह रत्नसेन को छुड़ाने के लिए चल दिया।

(५३) *गोरा बादल युद्ध-यात्रा-खण्ड :* रत्नसेन को छुड़ाने के लिए गोरा बादल

और पद्मावती ने एक योजना बनाई। सोलह सौ पालकियाँ सवारी गईं और उनमें हथियारों से सुसज्जित वीर राजपूत बैठ गए। उन्हीं में एक पलकी पद्मिनि की भी बनी जिसमें एक लुहार को बिठलाया गया। इन पालकियों के साथ गोरा बादल यह कहकर चले कि पद्मिनी अल्लाउद्दीन के साथ जा रही है। जब वे दिल्ली पहुँचे तो अल्लाउद्दीन से प्रार्थना की कि पद्मावती कह रही है, "मैं दिल्ली आ गई हूँ परन्तु मेरे पास चित्तौड़ की कुंजियाँ हैं। यदि बादशाह की आज्ञा हो तो उन्हें वह राजा रत्नसेन को सौंप दे। पद्मावती की यह बात बादशाह ने स्वीकार कर ली और उसकी पालकी को रत्नसेन के पास ले जाने की आज्ञा दे दी। उस पालकी से लुहार ने निकल कर राजा रत्नसेन के बंधन काट डाले और उन्हें मुक्त कर दिया। बादल रत्नसेन का साथ लेकर चितौड़ की ओर भाग लिया तथा दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। गोरा इसी युद्ध में खेत रहा।

(५४) *पदमावती मिलन खण्ड* : चित्तौड़ आकर रत्नसेन ने पद्मावति से भेंट की। पद्मावती ने देवपाल की बात रत्नसेन से कही।

(५५) *रत्नसेन देवपाल युद्ध-खण्ड* : देवराज की दूती वाली बात सुनकर रत्नसेन आग बबूला हो गया और उसने देवपाल को युद्ध में मार गिराया।

(५६) *राजा रत्नसेन-वैकुण्ठ-वास खण्ड* : इसी समय राजा रत्नसेन की मृत्यु हो गई और गढ़ की रक्षा का भार बादल के सिर पर आगया।

(५७) *पदमावती नागमती-सती-खण्ड* : राजा रत्नसेन के साथ पद्मावति और नागमती दोनों सती हो गईं। उनके सती होने के पश्चात् अल्लाउद्दीन ने चितौड़ पर आक्रमण किया बादल की युद्ध में हार हुई। सभी वीर संग्राम में रहे और स्त्रियाँ जौहर में जलकर समाप्त हो गईं। चित्तौड़ अल्लाउद्दीन के हाथों में चला गया परन्तु पद्मावति को वह प्राप्त न कर सका।

अखरावट

अखरावट को अखरावती या अखरावटी नाम से भी पुकारा जाता है। यह 'पद्मावत' से बाद की रचना है। इसमें कवि का झुकाव अध्यात्मिकता की ओर विशेष दिखाई देता है। इसके दो संस्करण उपलब्ध हैं, एक जायसी ग्रंथावली के साथ तथा दूसरा सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित।

आखिरी कलाम

'आखिरी कलाम' का सम्भावित नाम 'आखिरी मत नामा भी है। शायद इसका पहला नाम यही रहा हो जिसे बाद में लोगों ने बिगाड़ कर 'आखिरी कलाम' कर दिया हो। जायसी ग्रंथावली में यह प्रकाशित है।

ग्रंथ की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :

पुस्तक का प्रारम्भ भगवान् की स्तुति से होता है और फिर कवि आत्म परिचय

देता है। एक बड़े भूकम्प का वर्णन करता है। एक सूर्यग्रहण पड़ता है। फिर कवि मुहम्मद की स्तुति करता है, साथ ही अपने समय के शाह की प्रशंसा करता है। काव्य का रचना-काल भी सन् ९३६ हिजरी बतलाता है।

कवि प्रलय का वर्णन करता ह जिसमें सब जन्तु मर गए। इसका कर्ता मैकाइल है। फिर जिबरइल ने भी इन जीवों को नष्ट होने में याग दिया। फिर मैकाइल ने परमात्मा की आज्ञा से बारिश की। सारी दुनिया पानी में डूब गई। फिर दूसराफील के बाजे की आवज से पृथ्वी आकाश काँप उठे। चाँद सूरज तारे सब टूट कर गिर पड़े फिर अजराइल को भगवान् ने आज्ञा दी कि वह सब जीवों को ले आये। इस पर मारने वाले फरिश्ते ने जिबरइल, मैकाइल और इसराफील तीनों का मारा। तब भगवान् ने उससे पूछा "अब और कौन बचा है?" अजराइल ने कहा "अब मेरे आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं बचा।" तब भगवान् ने उसे भी मार डाला।

एक दिन चालीस वर्षों के पश्चात् परमात्मा ने सोचा कि उसका नाम लेने वाला कोई नहीं। उसने फिर चार फरिश्ते जिबरइल, मैकाइल, दूसराफील और अजराइल जिन्दा किए। जिबराइल ने जमीन पर आकर मुहम्मद का पुकारा। इसके उत्तर में लाखों स्वर प्रस्फुटित हुए। इसराफील परेशान होकर फिर खुदा के पास गये और पूछा कि वह उसे कहां खोजे? जिबरइाल सूंघकर चीजों को पहिचानने की शक्ति रखते थे फिर उन्हें भेजा गया। जिबराइल ने उन्हें खोज दिया और वह अपने अनुयाइयों के साथ जाग्रित हो गए।

फिर भगवान् ने सूर्य को चमकने का हुक्म दिया। फिर मुहम्मद साहब को हुक्म हुआ कि वह अपने अनुयाइयों के साथ खुदा के सामने पेश हों। मुहम्मद साहब ने धर्मी लोगों को पेश करने की आज्ञा माँगी परन्तु, परमात्मा ने दण्ड देने के लिए अधर्मी लोगों को बुलाया। इसपर रसूल ने आदम के पास जाकर अपने अनुयाइयों को खुदा से बचाने को सिफारिश की परन्तु आदम बोले कि वह तो स्वयं गेहूँ खाकर परेशानी में फँसे हैं। इस पर रसूल ईसा, इब्राहीम इत्यादि बहुतों के पास गये परन्तु कोई भी उनकी सहायता न कर सका। तब रसूल ने परमात्मा से ही विनती की। इस पर खुदा नाराज होकर बोले, "बीबी फातिमा का खोजो। और हसन हुसैन को किसने मारा था। फतिया मुझसे झगड़ा कर रही थी।" फिर बीबी फातिमा को खोजने का प्रयास किया गया परन्तु उनका पता न लगा। बीबी फातिमा को खुदा ने तब अपनी आज्ञा से बुलाया। बीबी फातिमा हँसन-हुसैन को सामने खड़ा करके बोली कि पहिले इनका न्याय होगा। संसार का न्याय फिर होता रहेगा। यदि इनका न्याय पहिले न हुआ तो वह शाप दे देंगी और सारा आसमान जलकर खाक हो जाएगा। इस पर खुदा ने रसूल से बीबी फातिमा को समझाने के लिए कहा जिससे कहीं अनुयाइयों पर उनके शाप की आफत न बरपा हो जाए।

रसूल ने फतिमा को समझाया। खुदा ने हसन हुसैन को मारने वाले मजीद को दंडित करके नर्क में डाल दिया। इसके पश्चात् रसूल ने अपने अनुयाइयों को क्षमा करवाया और फिर खुदा ने सबको दावत दी।

फिर खुदा ने मुहम्मद तथा उनके अनुयाइयों को एक प्रकाश के रूप में अपने दर्शन दिये। उस प्रकाश ने सबको बेसुध कर दिया और दो दिन तक सब अचेत रहे। तीसरे दिन जिबराइल ने सब को जगाया। फिर ये सब बहिश्त में गये जहाँ इन्हें हूरें और परियाँ मिलीं। वहाँ मृत्यु, नींद, दुःख, शोक, संताप कुछ नहीं था। सब भोग-विलास में रत थे।

यहीं समाप्त हो जाती है।

जायसी की भाषा

जायसी ने अपने ग्रंथों में ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग किया है। यह पूरबी प्रदेश की हिन्दी थी जिसका नाम अवधी पड़ा। खड़ी बोली और ब्रज से इसमें भिन्नता पाई जाती है। महाकवि तुलसीदास ने भी अपने रामचरितमानस में अवधी का ही प्रयोग किया है। परन्तु जायसी की अवधी और तुलसी की अवधी में भेद है। जायसी की अवधी को समझने के लिए कुछ साधारण बातें समझ लेना आवश्यक है :

क्रिया के रूप

१. *भविष्य कालिक* : पूर्वी बोलियों में भूतकालिक कृदन्त नहीं होते, तिङन्त रूप ही रहता है। क्रिया का रूप कर्त्ता के पुरुषलिंग और वचन के अनुसार होता है।

(२) प्रथम पुरुष भूत कालिक क्रिया के स्त्रीलिंग रूप 'एसि' और 'एनि' के स्थान पर 'इसि' और 'इनि' हो जाते हैं।

(३) पश्चिमी हिन्दी की भूत कालिक सकर्मक क्रिया में पुरुष-भेद नहीं होता।

(४) जायसी और तुलसी में क्रिया के आकारान्त रूप समान रूप से मिलते हैं। इनका प्रयोग दोनों कवियों ने तीनों पुरुषों, दोनों वचनों तथा दोनों लिंगों में किया है।

उत्तम पुरुष [१. का मैं *बोआ* जनम ओहि भूँजी ?
२. हम तो तोहि *देखावा* पीऊ।

मध्यम पुरुष [१. तुइ *सिरजा* यह समुद अपारा।
२. अब तुम आइ अँतरपट *साजा*।

प्रथम पुरुष [१. भूलि चकोर दिस्टि तहँ *लावा*।
२. तिन्ह *पावा* उत्तिम कैलासू।[1]

२. *वर्त्तमान कालिक* : वर्त्तमान कालिक क्रिया के रूपों में ब्रजभाषा से कोई विशेष भिन्नता नहीं होती। सिर्फ एक वचन मध्यमपुरुष के अन्त में 'सि' होता है। जैसे करसि, जासि, खावसि, इत्यादि।

---

१. जायसी ग्रंथावली भूमिका-भाग, पृष्ठ १८८

आज्ञा और विधी में भी 'सी' ही रूप रहता है परन्तु कहीं-कहीं 'ही' से समाप्त होने वाले रूप भी मिलते हैं। *देहि*, *लेहि* इत्यादि।

(३) *भविष्य कालिक* : अवधी के भविष्य कालिक रूप अन्य बोलियों से कम सम्बन्ध रखते हैं। ये रूप अवधी के अपने ही होते हैं। उत्तम पुरुष के बहुवचनों का रूप सब पुरुषों में मिलता है। जायसी और तुलसी दोनों ने सब पुरुषों के दोनों वचनों में इसी रूप का प्रयोग किया है :

उत्तम पुरुष [१. **कौन उतर देबौं तेहि पूछे। (एक वचन) मैं।**
२. **कौन उतर** *पाउव* **पैसारु। (बहुवचन) हम।**

प्रथम पुरुष [१. **होइहि नाप और जोख। (एक वचन)।**
२. **देव-बार सब जैहैं बारी। (बहुवचन)**[१]

'होइहि' का प्रयोग जायसी ने अधिकांश में 'होइ' = होगा किया है।

कारक चिन्ह: अवधी में कारक चिन्ह प्रथम पुरुष एक वचन की वर्त्तमान कालिक क्रिया के रूप में लगता है। जैसे :

अवधी = खाय माँ, आवै कहँ, बैटे कर इत्यादि।

खड़ी, व्रज = करने का, करन को; जाने को, जावन को इत्यादि।

अवधी में कहीं कहीं कारक चिन्ह का लोप भी हो जाता है।

(१) सबै सहेली देखै धाईं।[२]

सवनाम : पूर्वी अवधी में सर्वनाम एकारान्त होते हैं। जैसे :

केइ = किसने

जेई = जिसने

केहू = कोई

महाकवि जायसी ने ठेठ अवधी का तुलसी से अधिक प्रयोग किया है। कुछ असाहित्यिक शब्द देखिए :

मोकाँ = मुझको	जहिया = जब।
महूँ = मैं भी	अधिको = अधिक।

खड़ी और व्रज की प्रवृति दीर्घान्त है, परन्तु अवधी में हमें लघ्वंत प्रवृति मिलती है।

'सिरता पाईं' फारसी 'सिर ता पा' अर्थात् सिर से पैर तक, का प्रयोग कवि ने किया है।

मिठास जायसी की भाषा में काफी है और कर्णकटु शब्दों का प्रयोग आपने नहीं किया। कहीं कहीं कुछ गंवारु और भौंडे शब्दों का प्रयोग कुछ खटकने वाला भी अवश्य है

१. जायसी ग्रन्थावली—भूमिका भाग—पृष्ठ १८८

२. जायसी ग्रन्थावली—भूमिका भाग—पृष्ठ १८९

परन्तु वह उनकी सादगी के आवरण में इस तरह ढक जाता है कि पाठक की दृष्टि उससे अपने आप अलग हो जाती है। संस्कृत की कोमल काँत पदावली जायसी की भाषा में खोजना दुर्लभ है जनता की स्वाभाविक भाषा की लोच उसमें विद्यमान है। जायसी की भाषा में लोक भाषा का जो सजीव स्वरूप मिलता है यह तुलसी की भाषा में भी मिलना दुर्लभ है तुलसी भाषा के आचार्य थे और जायसी लोक-भाषा के मर्मज्ञ। दोनों की भाषा का सौंदर्य एक दम प्रथक-प्रथक है। जायसी की भाषा का मिठास देखिए

पिउ-बियोग अस बाउर जीउ। पपिहा नित बोलै 'पिउ पिऊ ॥
अधिक काम दाधै सो रामा। हरी लेइ सुवा गएउ पिउ नामा ॥
बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज भीज गइ चोली॥
सूखा हिया, हार भा भारी। हरे-हरे प्रान तजहि सब नारी ॥
खन एक आव पेट महँ साँसा। खनहिं जाइ जिउ होइ निरासा ॥
पवन डोलावहि, सीचहि चोला। पहर एक समुझहि मुख बोला ॥
प्रान पयान होत को राखा? को सुनाव पीतम कै भाखा?॥

महाकवि जायसी ने भाषा का सरल-से-सरल प्रयोग किया है। शब्दों का रूप बिगाड़ने का दोष भी इनके अन्दर नहीं पाया जाता। चरणान्त में दीर्घांत की प्रणाली का अनुसरण आप में अवश्य है।

खड़ी	ब्रज	अवधी
थोड़ा	थोरो	थोर
पतला	पातरो, पतरो	पातर
भला	भलो	भल
नीका	नीको	नीक
खोटा	खोटो	खोट
बड़ा	बड़ो	बड़
तैसा	तैसो	तैस
जैसा	जैसो	जैस
ऐसा	ऐसो	ऐस, अस
वैसा	वैसो	वैस
तुम्हारा	तुम्हारो	तुम्हार
हमारा	हमारो	[हमार
पीला	पीलो	पीयर
तेरा	तेरो	तोर
दूना	दूनो	दून
प्यारा	प्यारो	प्यार

साँवला साँवरो साँवर

चौपाई के अन्त वाला पद कवि लध्वंत भी है तब भी वह दीर्घांत कर लिया जाता है। यह प्रकृति जायसी तथा तुलसी दोनों में मिलती है।

जायसी की भाषा सीधी बोलचाल की भाषा है। आपने समास पदों का प्रयोग नहीं के हो बराबर किया है। कहीं-कहीं पर आपने फारसी के पदों और वाक्यांशों का भी प्रयोग कर दिया है। 'केस मेघावरि *सिरता* पाईं' में मिलता है; उसके अतिरिक्त आपने शब्दों का जैसा का तैसा रूप ही अपनी भाषा में रखा है।

गोस्वामी तुलसीदास का अधिकार लोक-भाषा तथा सुसंस्कृत भाषा दोनों पर समान था परन्तु जायसी का अधिकार केवल लोक-भाषा पर ही था और उसका सरल, मधुर तथा आकर्षक रूप आपने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया हैं।

सार निरूपण

जहाँ तक यत्र-तत्र ग्रन्थों में उल्लेखों के आधार का सम्बन्ध है जायसी द्वारा लिखित २१ ग्रन्थ कहे जाते हैं। परन्तु उक्त ग्रन्थों में से अभी तक पदमावत, अखरावट और आखिरी कलाम तीन ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। अन्य ग्रन्थों की पाँडुलिपियाँ भी उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए प्रामाणिक रूप से यही तीन ग्रन्थ जायसी के हैं।

पदमावत का रचना काल हिजरी ६४७ ईसवी सन् १५४० कवि ने लिखा है। पदमावत के अनुवाद अंग्रेजी बंगला, उर्दू, फारसी, फ्रेंच, पश्तों इत्यादि में भी हो चुके हैं। पदमावत की पूरी कथा ५७ खंडों में वर्णित है इसका पूर्वार्ध काल्पनिक और उत्तरार्ध ऐतिहासिक है। कहानी लोक प्रचलित है।

'आखरी कलाम' कवि की आखरी रचना है। इससे कवि के विषय में काफी जानकारी प्राप्त होती है।

कवि की भाषा टेठ अवधी है, ग्रामीणता को लिए हुए। उसमें कहीं-कहीं दूसरी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग मिलता पांडित्य भाषा से बिल्कुल नहीं झलकता साधारण सरलभाषा है।

अध्याय ४

जायसी की रचनाओं में साहित्यिक अभिव्यक्ति

साहित्यिक अभिव्यक्ति की जाँच करने के लिए हमें साहित्य की कुछ विशेष वस्तुएँ खोज निकालनी होती हैं। जिनसे साहित्य के गुणों की संज्ञा दी जा सकती है। ये ही कसौटियाँ हैं साहित्य को परखने की। पाश्चात्य-साहित्य के आचार्यों ने साहित्य में चार प्रधान तत्व माने हैं। जिस रचना में ये तत्व नहीं पाए जाते उसे वे लोग साहित्य की कोटि में रखने को उद्यत नहीं। इन तत्वों के अनुपात तथा न्यूनाधिक होने से ही इसका स्थान भी साहित्य में बनता है। बौद्धिकता, भावनात्मकता, कल्पना, और शैली ये चार तत्व हैं, जिनके आधार पर पाश्चात्य विद्वान अपनी रचनाओं का मूल्यांकन करते हैं। किसी रचना में यदि ये चारों ही तत्व पर्याप्त मात्रा में सुगठित और सुसज्जित तथा सुचयन किये हुए हों तो कहना ही क्या; परन्तु यदि कुछ न्यूनाधिक रूप में भी मिलते हैं, तब भी वह रचना साहित्य की ही कोटि में आएगी। कुछ रचनाएँ ऐसी भी रहती हैं जिनमें इनमें से एक, दो या तीन तत्वों की प्रधानता रहती है, और चौथा तत्व होता ही नहीं। वह रचना भी साहित्य की ही कोटि में आएगी। इन चारों ही तत्वों में एक तत्व साहित्य के बहिरंग से सम्बन्ध रखता है और तीन उसके अन्तरंग से। विचार कल्पना और भावना का सम्बन्ध, अन्तरंग से है और शैली का काव्य के बहिरंग से। शैली में अलंकारिक प्रयोग भाषा के प्रयोग, तथा उसके गुण और दोषों पर ध्यान दिया जाता है।

भारतीय काव्य शास्त्र के आचार्यों में भी साहित्य की कसौटी निर्धारित करने की दिशा में प्रयास किया है। कुछ आचार्य काव्य में ध्वनि को प्रधानता देने की ओर झुके और कुछ ने चमत्कार अर्थात् अलंकार को ही काव्य का सर्वस्व मान लिया। यह एक पक्षीय प्रवृत्ति आज के स्वतंत्र विचारक को मान्य नहीं हो सकती। अलंकार और ध्वनि दोनों ही काव्य के गुण हैं, परन्तु एक सीमा में रहकर आवश्यकता के अनुसार साहित्य की प्रगति में बढ़ावा, सहयोग और सहारा देने के लिए, साहित्य पर छा जाने के लिए नहीं। यदि ये तत्व साहित्य की मूल आत्मा पर छा गये तो आत्मा मर जायेगी, दा

जायेगी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार खेमखाप के वस्त्र और सुनहरा जेवर पहिन कर सुन्दर स्त्री तो सुन्दर लगती ही है परन्तु कुछ अवगुण वाली स्त्री के भी इस रूप में कुछ अवगुण ढक जाते हैं। परन्तु यही कपड़ा और जेवर यदि भद्दे तरीके से किसी स्त्री पर केवल लाद दिये जायें तो ये सुन्दर स्त्री को भी असुन्दर बनाने में सहायक हो सकते हैं।

भारतीय आचार्य अन्त में आकर रस-सिद्धान्त पर ठहरते हैं। वे कहते हैं कि साहित्य वही है जो रस-परिपाक तक पहुँच सके। यदि पाठक को किसी रचना के पढ़ने में रस न आया, उसकी कल्पना के प्रांगण में आनन्द की सृष्टि नहीं हुई, तो वह साहित्य नहीं, काव्य नहीं।

इस प्रकार हमने देखा कि किसी भी उच्च साहित्य को परखने के लिए उसकी बौद्धिकता, भावनात्मकता, कल्पना-शक्ति, शैली, रस-परिपाक इत्यादि को देखना चाहिए। साथ ही साहित्य का उद्देश्य देखना भी आवश्यक है। हम काव्य को वह आनन्ददायक रचना मानते हैं जो जीवन में उत्साह, स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करे। काव्य ललित, सरल और सार्थक शब्दों तथा पदों से भरा-पूरा होना चाहिए। शब्द और अर्थ का सौष्ठव काव्य को उच्च कोटि का बनाता है। क्लिष्टता काव्य में उतनी न आनी चाहिए कि पाठक उसे समझ ही न सके। रचना युक्ति से पूर्ण होनी चाहिए। उचित गुणों का उसमें समावेश हो और इस तरह उसमें विचार, भावना तथा कल्पना का सुन्दर सामंजस्य स्थापित हो जाये।

बुद्धि-तत्व

महाकवि जायसी के साहित्य की आत्मा में हमें बुद्धि-तत्व की एक हल्की-सी रेखा दिखलाई देती है और वह है उनके साहित्य में हिन्दू तथा मुस्लिम-संस्कृति का सामंजस्य। एक भारतीय कथा के आधार पर, भारतीय भाषा में, और वह भी जन-साधारण की भाषा में, भारतीय छंदों में, फारसी की शैली पर सूफी सिद्धान्तों को लेकर प्रेम का प्रसार किया। उस युग के उस महान् लेखक ने इस प्रकार दो संस्कृतियों का सामंजस्य स्थापित करके दोनों के बीच प्रेम की सरिता बहाई। यह जायसी के साहित्य का बौद्धिक पहलू है। इसके अतिरिक्त जायसी-साहित्य भावना और कल्पना प्रधान काव्य है, प्रेम का आख्यान है, जो हिन्दी में अपने ढंग का एक ही है और महाकाव्य होने के नाते हिन्दी-साहित्य में मानस के पश्चात् अपना एकाकी स्थान रखता है।

भावना-तत्व

महाकवि जायसी का मूल ग्रंथ पद्मावत है और उसी के आधार पर हम जायसी के साहित्य का अवलोकन कर रहे हैं। पदमावत की कथा हम गत अध्याय में दे चुके हैं यह एक प्रेमाख्यान है, जिसमें मानव-जीवन में आ सकने वाली परिस्थियों को लाकर

एकत्रित किया गया है। वे परिस्थितियाँ कहीं-कहीं कल्पना की उड़ानों में लिपटकर अस्वाभाविक भी हो जाती हैं, परन्तु स्वाभाविकता की भी काव्य में कमी नहीं है। किसी स्त्री का पति जब किसी पर-स्त्री पर रीझकर परदेश चला जाये और वह स्त्री फिर भी पतिव्रत धर्म का पालन करे, तो उसकी क्या दशा हो सकती है इसकी साकार प्रतिमा नागमती, कवि ने हमारे सामने प्रकट की है। नाजुक खयालियाँ फारसी की दी गई हैं काव्य में, और कहीं-कहीं तो वे ऐसी हिला देने वाली वेदना पाठक के हृदय में उठती हैं कि पढ़ते-पढ़ते आँखों में आँसू आ जाते हैं। नागमती वियोग-खंड की एक-एक पंक्ति से मानो वियोग बहकर निकल रहा है। पत्थर-से-पत्थर कलेजा भी द्रवित हो उठता। नागमती कहती है।

बिरह-हस्ति तन सालै, धाय करै चित चूर।
वेगि आई पिउ ! बाजहु, गाजहु होइ सुदूर॥

—पद्मावत नागमती वियोग-खंड—पृष्ठ १५३

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन उड़ाव'।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाँव॥

—पद्मावत—पृष्ठ १५५

कवि प्रेम-भावना का पुजारी है। प्रेम को ही वह सर्वस्व समझता है और प्रेम द्वारा ही मनुष्य प्रत्येक इष्ट की सिद्धि मानता है। परन्तु इस प्रेम की सबसे ऊंची सीढ़ी पर चढ़ने में आपत्तियों का सामना करना होता है, अनेकों प्रकार की बाधाएँ सामने आती हैं, परन्तु यदि मनुष्य दृढ़प्रतिज्ञ और प्राणों को हथेली पर लेकर चलने वाला साहसी होता है तो उसे अपने लक्ष्य में सफलता मिलती है। रत्नसेन को उस लक्ष्य की प्राप्ति साहस से ही हुई। वह अपना भोग-विलास छोड़कर तपस्या के लिए चल पड़ा, तभी तो उसे पद्मावती की प्राप्ति हुई। यहाँ पद्मावती के रूप में कवि भगवान् की कल्पना कर रहा है, और प्रेम-भावना में बहकर वही मान्यता उसे देता है।

पद्मावत में जायसी ने हिन्दू पतिव्रत-धर्म और सती की प्रथा पर प्रकाश डाला है। हिन्दू-संस्कृति की भावना को कहीं पर भी काव्य से ठेस न लग जाये, इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। भावना काव्य में आद्योपांत वही प्रेम की प्रधान रूप से रहती है, जिसका सहारा लेकर कल्पना के सहारे कथा आगे बढ़ती है। आत्मा और परमात्मा के मिलन का एक रूपक बाँधा है कवि ने। रूपक पूर्ण रूप से काल्पनिक ही है, परन्तु उसे इतिहास की डोर में बाँधकर कुछ ऐसा बना दिया है कि भावना के क्षेत्र में कल्पना को और बल मिल जाता है। कवि का ईश्वरोन्मुख प्रेम ही उसकी भावनाओं का मूल स्रोत है। सूफी ईश्वर की कल्पना प्रियतमा के रूप में करते हैं। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने पद्मावत की समस्त कहानी को स्वयं अन्योक्ति कह दिया है। कवि का वर्णन लौकिक से अलौकिक की तरफ चलता है। कवि ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों की सृष्टि की है। "क्या संयोग क्या

वियोग दोनों में कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देने लगता है, जगत् के समस्त व्यापार उसकी छाया से प्रतीत होते हैं। वियोग-पक्ष में जब कवि लीन होता है तब सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र सब उसी परम विरह में जलते और चक्कर लगाते दिखलाई देते हैं, प्राणियों का लौकिक-वियोग जिसका आभास मात्र है :

"बिरह के आगि सूर जरि काँपा। रातिउ दिवस जरै ओहि तापा॥"

—जायसी ग्रन्थावली-पृष्ठ ५५ भूमिका-भाग।

जायसी की प्रेम-भावना की खुलासा व्याख्या उनके सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करते समय की गई है। प्रेम वास्तव में कवि की कोई भावना मात्र ही नहीं थी, यह उसका दर्शन था और इसी दर्शन के स्पष्टीकरण के लिए कवि ने यह महाकाव्य लिखा है।

भावना के क्षेत्र मे कवि ने पात्रों द्वारा जिन स्थायी भावों को व्यंजना-स्वरूप लिया है उनमें प्रधानतया रति, शोक, और युद्धोत्साह हैं। क्रोध की व्यंजना भी कहीं-कहीं पर पाई जाती है। समुद्र-वर्णन में भय का आलम्बन मात्र है। युद्ध-वर्णन में वीभत्स का भी आलम्बन ही है, स्थायी भाव नहीं। जायसी की भाव-व्यंजना बहुत ही स्वाभाविक है, क्रम-बद्ध है। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के व्यर्थ और अनावश्यक प्रयोगों द्वारा भाव-प्रदर्शिति करने का प्रयास इस कवि में नहीं मिलता। उनका प्रयोजन केवल भावोत्कर्ष तक ही रहता है और उसी के लिए वह उनका प्रयोग करते हैं।

कवि ने पद्मावत में प्रधानता शृंगार की ही रखी है। संभोग शृंगार में कवि केवल बाहरी वर्णन तक सीमित रहा है। उसकी दशा के चित्रण में स्तम्भ, रोमांच, स्वेद यह कुछ भी वर्णित नहीं है। वास्तव में कवि का वियोग-पक्ष जितना निखर कर सामने आया है उतना संयोग-पक्ष नहीं आ सका।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भावोत्कर्ष को मापने के दो माप-दंड स्थापित किये हैं :

"१. कितने भावों और गूढ़ मानसिक विकारों तक कवि की दृष्टि पहुँची है?
२. कोई भाव कितने उत्कर्ष तक पहुँचता है।"

कसौटी ठीक ही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इनमें पहिले स्थान पर जायसी को उतना ऊँचा नहीं पाते। वास्तव में सच भी यही है कि यदि तुलनात्मक दृष्टिकोण से हम गोस्वामी जी के साथ उन्हें रखें तो वह सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि नहीं मिलेगी जो उनमें पाई जाती है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के बीच बनने वाली मानसिक परिस्थितियों का चित्रण जायसी कम सफलता के साथ कर सके हैं। भावना के हर कोने को झाँकना कवि की क्षमता में नहीं रहा है। मनुष्य के हृदय की बहुत सी अवस्थाओं तक जायसी की पहुँच नहीं हो पाई है।

हाँ, जहाँ तक किसी भाव को उत्कर्ष तक पहुँचाने की बात है, वहाँ कवि को आशातीत सफलता मिली है। विशेष रूप से विप्रलम्भ शृंगार का उत्कर्ष दिखलाने में

तो कवि को चमत्कारिक सफलता प्राप्त है।

रति-भाव के अन्दर मानसिक दशाओं के चित्रण देखिए :

बिनु जल मीन तलफ जस जीऊ। चातक भइऊँ कहत "पिऊ-पिऊ।"
जारउँ बिरह जस दीपक बाती। पथ जोहत भइँ सीत सेवाती॥
भइउँ बिरह दहि कोइल कारी। डारि-डारि जिमि कूकि पुकारी॥
कौन सो दिन जब पिउ मिलै, यह मन राता जासु।
वह दुःख देखै मोर सब, हौं दुःख देखौं तासु॥

× × × ×

अबहूँ मया-दिस्टि करि, नाह निठुर! घर आउ।
मँदिर उजार होत है, नव कै आइ बसाउ॥

रोइ गँवाए बारह मासा। सहस-सहस दुख एक-एक साँसा॥
तिल-तिल बरख-बरख परि जाई। पहर-पहर युग-युग न सेवाई॥
सो नहीं आवै रूप मरारि। जासौं पाव सुहाग सुनारी॥
साँझ भए झुरि-झरि पथ हेरा। कौनि सो घरी करै पिउ फेरा॥
दहि कोइला भई कंत सनेहा। तोला माँसु रहि नहिं देहा॥
रकत न रहा, बिरह तन गरा। रती-रती होई नैनन्ह ढरा॥
पाय लागि जोरै धनि हाथा। जारा नेह जुड़ावहु नाथा॥
बरस दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झंखि।
मानुष घर-घर रोइ कै, बूझै निसरी पंखि॥

पति से मिलने की अभिलाषा उक्त पंक्तियों में कितनी प्रखर रूप से झलक रही है?

वात्सल्य की भी एक झाँकी देखिए जहाँ 'सुत के अनिश्चय' से उत्पीड़ित माता कहती है :

सब दिन रहेहु करत तुम भोगू। सो कैसे साधब तप जोगू?
कैसे धूप सहब बिन छाहाँ? कैसे नींद परिहि भुइँ माहाँ॥
कैसे ओढ़ब काथरि कंथा? कैसे पाँव चलब तुम पंथा॥
कैसे सहब खनहि खन भूखा? कैसे खाब कुरकुटा रूखा॥

कवि ने वीर रस का भी अच्छा चित्रण किया है। गोरा बादल के प्रसंग में उत्साह की व्यंजना मिलती है। पदमनी के दुखी होने पर दोनों भाई प्रतिज्ञा करते हैं :

जौ लगि जियहि न भागहिं दोऊ। स्वामि जियत कित योगिनी होऊ॥
उए अगस्त हस्ति जब गाजा। नीर घटे घर आइहि राजा॥

इस प्रकार कवि की भाव-व्यंजना अधिक व्यापक क्षेत्र में न होने पर भी जहाँ है वहाँ बहुत पूर्ण और प्रभावात्मक है। इससे रस-परिपाक में विशेष सहयोग मिला है।

कल्पना-तत्व

जहाँ तक कल्पना-तत्व का सम्बन्ध है वहाँ तक तो कथा में यत्र-तत्र कुछ ऐतिहासिक संकेतों के अतिरिक्त सब कुछ काल्पनिक ही है। कल्पना का प्रयोग अलंकारों में ही नहीं है वरन् कथा-वस्तु के निर्माण और घटनाओं की सृष्टि में भी किया गया है। पूरी-की-पूरी कथा कल्पना के ही आधार पर निर्मित की गई है।

कल्पना-चित्र अंकित करने में भी यदि देखा जाय तो आपको उड़ानें कहीं-कहीं बिहारी से जा टकराती हैं। कवि की नाजुक खयालियाँ उसकी कल्पना-शक्ति की ही देन हैं। इतनी कल्पना कम हिन्दी काव्यों में मिलेगी। सिंहलद्वीपकी कल्पना, वहाँ पद्मिनी नारी की कल्पना, सात समुद्रों की कल्पना, यात्रा करके सिंहलद्वीप में जाकर हीरामन तोते को गुरु बनाकर प्रेम-तप द्वारा पद्मिनी को प्राप्त करने की कल्पना, नागमती का संदेश लेकर आने की कल्पना, देश लौटते समय समुद्र की बेटी से मिलने की कल्पना यह सब, कुछ कल्पना ही है। परन्तु यह काल्पनिक गठन भी बड़ा सुन्दर है, रोचक है और हृदय को आकर्षित करने की अपने में क्षमता रखता है।

कल्पना और भावना का एक सुन्दर चित्र हम नीचे प्रस्तुत करते हैं, देखिये जायसी ने कितने सफल चित्र खींचे हैं :

पिउ सौं कहेहु संदेसड़ा, हे भौंरा ! हे काग !
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुआँ मेहि लाग।

पूस जाड़ थर-थर तन काँपा। सूरज जाइ लंका-दिसि चाँपा ॥
बिरह बाढ़, दारुण भा सोऊ। कँप-कँपि मरौं, लेइ हरि जीऊ ॥
कंत कहाँ लागों ओहि हियरे। पंथ अपार सूझ नहीं नियरे ॥
सौंर सपेती आवै जूड़ी। जानहु सेज हिवंचल बूढ़ी ॥
चकई निसि बिछुरै, दिन मिला। हौं दिन-रात बिरह कोकिला ॥
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जियै बिछोही पंखी ॥
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा ॥

जायसी-ग्रन्थावली को पढ़ने पर उसमें काल्पनिक उड़ानों की कमी नहीं मिलेगी। कवि कल्पना का सागर है। पद्मावती की कथा ऐतिहासिक होते हुए भी प्रधान रूप से काल्पनिक ही है।

पद्मावत की कथा को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग में रत्नसेन की सिंहलद्वीप-यात्रा आती है। उसके पश्चात् पद्मिनी को लेकर लौटने तक की गाथा है। इसे हम कथा का पूर्वार्ध कहेंगे। दूसरा भाग राघव के निकाले जाने से लेकर पद्मावती के सती होने तक की कथा, इसे हम उत्तरार्ध कहेंगे। इसका पूर्वार्ध एकदम काल्पनिक है और उत्तरार्ध ऐतिहासिक। कल्पना के आधार पर कवि ने एकदम नया संसार ही रच

कर आँखों के सामने खड़ा कर दिया है। सिंघलद्वीप और उसमें पद्मिनी की कल्पना। फिर हीरामन तोता, विविध प्रकार के समुद्र, समुद्र की बेटी और उनका जहाज टूट जाने पर मेल होना, ये घटनाएँ कवि-कल्पना से घनिष्ट सम्बन्ध रखती हैं।

प्रबन्धात्मकता

महाकवि जायसी का मुख्य ग्रन्थ पद्मावत है। इसीलिए पद्मावत के आधार पर ही हम जायसी के काव्य की साहित्यिकता आँकते हैं। पद्मावत एक प्रबन्ध काव्य है, महाकाव्य है। प्रबन्ध-काव्य की परख करते समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि "किसी प्रबन्ध-कल्पना पर कुछ विचार करने के लिए यह देखना चाहिए कि कवि घटनाओं को किसी आदर्श परिणाम पर लेजाकर तोड़ना चाहता है अथवा यों ही स्वाभाविक गति पर छोड़ना चाहता है। यदि कवि का उद्देश्य सत् और असत् का परिणाम दिखाकर शिक्षा देना होगा तो वह प्रत्येक पात्र का परिणाम वैसा ही दिखायेगा जैसा न्याय-नीति की दृष्टि से उसे उचित प्रतीत होगा। ऐसे नपे-तुले परिणाम काव्य-कला की दृष्टि से कुछ कृत्रिम से जान पड़ते हैं। पद्मावत में कवि कथा को किसी आदर्श की ओर नहीं ले जाता। कवि का लक्ष्य इस प्रकार आदर्श-स्थापना नहीं है। संसार जैसे चलता है, वैसे चलता है। कवि गति के प्रवाह में कोई बाधा उपस्थित नहीं करता। अच्छे चरित्र वाले सर्वत्र सुखी ही नहीं रहते और बुरे चरित्र वाले कष्ट ही भोगते रहें, यह भी सम्भव नहीं। फिर भी जायसी ने काव्य की उन मान्यताओं का ध्यान रखा है जिनके आ जाने से पाठकों के चित्त में क्षोभ उत्पन्न हो और काव्यानन्द की प्राप्ति में बाधा उपस्थित न हो। अर्थात् सत्पात्रों के भीषण परिणाम कवि ने प्रदर्शित नहीं किये। कवि ने कहीं भी कोई चित्रण ऐसा नहीं किया जिससे काव्य में उदासीनता न झलकने लगे।

प्रबन्ध काव्य में मानव-जीवन की पूरी विवेचना रहती है। घटनाओं की सम्बद्ध-शृंखला का क्रम स्वाभाविक रूप से चलता है। नाना प्रकार के भावों की रसात्मक अभिव्यक्ति प्रबन्ध काव्य में रहती है। प्रबन्ध काव्य का चित्रण इति वृत्तात्मक नहीं होता क्योंकि इस प्रकार का चित्रण रसानुभव नहीं कर सकता। श्रोता के हृदय में रस संचारित करने वाली वस्तु और व्यापारों का चित्रण प्रबन्ध काव्य में आवश्यक होता है।

प्रबन्ध काव्य की घटनाओं के चित्रण में इतिवृत्तात्मकता आजाने से रस-संचारित नहीं हो सकता। मानव-जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहिचान कर उनका कलात्मक चित्रण किया जाता हैं। पद्मावत में ऐसे मर्मस्पर्शी स्थलों की कमी नहीं है। नागमती के शोक का चित्रण कवि ने जितना मर्मस्पर्शी किया है उतना कथा का अन्य भाग नहीं हो सका। रत्नसेन की सूली की कथा का चित्रण, प्रेम का चित्रण, इत्यादि स्थलों को कवि ने खूब उभारा है। नख-शिख वर्णन भी कवि ने बहुत सुन्दर किया है। नागमती के सुआ को अपना सौन्दर्य दिखा कर यह पूछने पर कि :

सुआ बानि कसि कहु कस सोना। सिंघल दीप तोर कस लोना ?
कौन रूप तोरी रूपमनी । दहुं हौं लोनि, कि वै पदूमनी ?
जो न कहसि सत सुअटा तोहि राजा कै आन।
है जोई एहि जगत महँ मोरे रूप समान ।।

सुआ उत्तर देता है। कितना मार्मिक चित्रण कवि ने सुआ की स्पष्टवादिता के साथ किया है :

सुमरि रूप पद्मावति केरा। हँसा सुआ, रानी मुख हेरा ॥
जेहि सरवर मँह हंस न आवा। बगुला तेहि सर हंस कहावा ॥
दई कीन्ह अस जगत अनूपा। एक-एक तें आगरि रूपा ॥
कै मन गरब न छाजा काहू। चाँद घटा औ लागेउ राहू ॥
का पूछहु सिंघल कै नारा। दिनहिं न पूजै निसि अँधियारी।।
पुहुप सुवास सो तिन्ह कै काया। जहाँ माथ का बरनौं पाया ॥
गढ़ी सो सोने सोंधे, भरी सो रूपै भाग।
सुनत रूखि भई रानी, हिये लोन अस लाग ।।

जायसी का मुख्य ग्रन्थ दोनों ही रूप से गति पाता है। उसकी प्रबन्धात्मकता में इतिवृत्तात्मकता और रसात्मकता दोनों मिलती हैं। दोनों का स्थानोपयुक्त प्रयोग कवि ने किया है। कथा का ढाँचा जहाँ इतिवृत्तात्मक रूप से बाँधा जाता है वहाँ उसकी सुन्दर लगने वाली मांस पेशियों का गठन रसात्मक चित्रणों द्वारा ही होता है। प्रबन्ध काव्य एक बागीचा है जिसकी सड़कें, क्यारियाँ, तालाब, घास, सभी सौंदर्य-वर्धक और आवश्यक है, परन्तु उनके गठन से भी अधिक सुन्दर वे स्थल हैं जहाँ रंग बिरंगे फूल खिले हुए हैं। पूरे-के-पूरे बाग में ऐसे फूलों के स्थान थोड़े ही होते हैं। येही प्रबन्ध काव्य के रसात्मक स्थल हैं जिनके प्रति यदि कवि उदासीनता से काम लेता है तो काव्य में रसात्मकता पैदा नहीं हो सकती और सम्पूर्ण काव्य एक कथा का ढाँचा मात्र रह जाता है।

पद्मावत में एक प्रबन्ध काव्य के सभी गुण वर्तमान हैं। कथा-प्रवाह सरलता पूर्वक पूर्ण क्रम-बद्धता के साथ आगे बढ़ता है। इतिवृत्तात्मक तथा रसात्मक स्थलों का ऐसा सम्बन्ध स्थापित हुआ है कि समस्त काव्य रस में सराबोर हो उठा है। अपने ढंग का यह हिन्दी का एक ही प्रबन्ध काव्य है। पद्मावत की कहानी का घटना-चक्र ही ऐसा है कि मानव-जीवन की सुख दुःख पूर्ण दशाओं का चित्रण आ जाता है। प्रेम, विरह, मिलन, त्याग, तपस्या, यात्रा, ममता, विपत्ति, जय, पराजय, युद्ध, छल, वैर, द्वेष, पतिव्रतधर्म, वीरता, शृंगार इत्यादि क्या है जो पद्मावत में नहीं आगया है। मानव-जीवन की सभी दिशाओं की ओर कवि झाँका है। मानव के पारस्परिक सम्बन्धों का खूब चित्रण किया है और उसमें काफी सजीवता आई है। प्रेम-पथ का निरूपण कवि ने बहुत ही सफलता के साथ किया है।

सम्बन्ध-निर्वाह

प्रबन्ध काव्य में सम्बन्ध का ठीक-ठीक निर्वाह होना नितान्त आवश्यक है। जायसी का सम्बन्ध-निर्वाह आदर्श है। प्रसंगो की शृङ्खला और कथा का प्रवाह ठीक-ठीक चलाने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। कवि ने विवरण खूब किये हैं, जिनके होने से कथा-प्रवाह खंडित नहीं होता। कहीं-कहीं जहाँ कवि अनावश्यक चित्रणों की ओर झुक जाता है, वहाँ कुछ ऊबने और पन्ने पलट कर आगे खिसक जाने की बात अवश्य आ जाती है, परन्तु ऐसे स्थल काव्य में बहुत ही कम आये हैं।

काव्य में कथाएँ प्रासंगिक और आधिकारिक, दो प्रकार की होती हैं। प्रासंगिक कथाओं का मेल आधिकारिक कथा के साथ मिलाना होता है। जैसे किसी ब्राह्मण का सिंघल द्वीप जाकर तोता खरीद लाने और फिर उसे राजा रत्नसेन के हाथ बेचने की बात प्रासंगिक है और उसका रत्नसेन के पद्मावती को लेने के लिए सिंघल द्वीप जाने और वहाँ से पद्मावती को लाने वाली मूल कथा से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार के सम्बन्ध कवि ने कुशलता पूर्वक स्थापित किये हैं। कवि को इसमें कलात्मक सफलता मिली है। जायसी की प्रासंगिक और आधिकारिक कथाएँ दोनों ही गठकर चलती हैं।

पद्मावत में पद्मावती का सती होना एक कार्य है। इस घटना की ओर कथा को अग्रसर करने में जिस-जिस प्रासंगिक कथा के जितने-जितने योग की आवश्यकता है, वह उतना ही आता है। कवि इस ओर काफी सतर्क रहा है। पद्मावती के जन्म से लेकर सिंघल गढ़ घेरने तक कथा का प्रारम्भिक भाग है। मध्य भाग पद्मावती के विवाह से लेकर सिंघलद्वीप से चल देने तक की कथा है और अंतिम भाग में राघव-चेतन के देश निकाले से पद्मावती के सती होने तक है। यह कार्य जहाँ पर जाकर कथा का अन्त होता है बहुत महत्त्वपूर्ण होने की आवश्यकता है। रामायण में यह कार्य रावण का वध है। उसी प्रकार यहाँ पद्मावती का सती होना भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं। यह प्राचीनों का मत है, जिसका कवि ने अपने काव्य में निर्वाह किया है।

जैसा हम ऊपर भी संकेत कर चुके हैं काव्य की गति में कहीं-कहीं कुछ अनावश्यक चित्रणों के कारण बाधा उपस्थित हो जाती है। कहीं-कहीं कवि व्यर्थ का ज्ञान छाँटने का भी प्रयास करता है और दर्शन को एक अपने अजीब ढंग से सामने रखता है :

तुम पंडित जानहु सब भेदू। पहिले नाद भयउ तब बेदू॥
आदि पिता जो बिधि अवतारा। नाद संग जिउ ज्ञान संचारा॥
नाद, बेद, मद पैड जो चारी। काया महँ ते लेहु बिचारी॥
नाद हिये, मद उपने काया। जहँ मद तहाँ पैड नहिं छाया॥

इसी प्रकार के अन्य अनेकों चित्रण कवि ने किये हैं :

वर्णन-शैली

कवि की वर्णन-शैली काफी प्रभावात्मक है। परन्तु जैसा ऊपर कह चुके हैं उस प्रभावात्मकता में गति रुक जाने वाले स्थलों की भी कमी नहीं है। कवि जहाँ चित्रणों की झोंक में आता है तो अतिशयोक्तियों की झड़ी लगा देता है। कवि ने सिंघलद्वीप का वर्णन किया है, यात्रा का वर्णन किया है, समुद्रों का वर्णन किया है, विवाह का वर्णन किया है, युद्ध का वर्णन किया है, चित्तौडगढ़ का वर्णन किया है, बारह मासे का वर्णन किया है, यहाँ तक आती है स्थानों तथा विविधि कार्यो तथा घटनाओं के वर्णन की बात। इनके अतिरिक्त कवि ने परिस्थितियों और भावनाओं का चित्रण भी कल्पना के जोर से बहुत ही प्रभावात्मक किया है। वर्णनों में कहीं-कहीं पर कवि अनावश्यक चीजें भी गिनाने लग जाता है। जिससे रस-प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है। परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। रूप और सौंदर्य का चित्रण कवि ने बहुत ही अच्छा किया है और उसे पढ़ कर कवि के आदर्श नायक और नायिका का सौंदर्य साकार रूप में नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। यही रूप सौंदर्य कवि की कल्पना और कथा का आधार है। पद्मावती के रूप में वह ईश्वर की कल्पना कर रहा है, जिससे सुन्दर उसकी दृष्टि में और कुछ हो ही नहीं सकता। कवि ने यह सौंदर्य-चित्रण परम्परागत किया है। इसमें कोई नवोनता खोजना नादानी है। वही पुराने प्रचलित उपमान कवि ने प्रयुक्त किये हैं परन्तु फिर भी कविता में नयापन है। नाजुक खयाली उर्दू और फ़ारसी की आजाने से कल्पना और भावना का पैनापन तीखा हो जाता है।

कवि पद्मावती के रूप में ब्रह्म के सौंदर्य को निरखता-परखता है। तभी तो वह कहता है :

जग डोले डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाहिं पल माहाँ॥
जबहिं फिराहिं गगन गहि बोरा। अस वै भँवर चक्र के जोरा॥
पवन झकोरहिं देहि हिलोरा। सरग लाइ भुँइ लाइ बहोरा॥

× × × ×

वर्णन-शैली कवि जायसी की काफ़ी प्रभावात्मक है क्योंकि उसमें स्थान-स्थान पर भावना की तीखी पुट रहती है। फिर किसी चीज का चित्र खींच देने में भी यह कवि कुछ कम दक्ष नहीं है। सिंघल-द्वीप का वर्णन देखिए :

घन अमराउ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुँत लागि अकासा॥
तरिवर सबै मलयगिरि लाई। भइ जग छाँह, रैनि होइ आई॥
मलय-समीर सोहावनि छाँहा। जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ॥
ओहि छाँह रैनि होइ आवै। हरियर सबै अकास देखावै॥
पथिक जो पहुँचै सहिकै घामू। दुःख बिसरै, सुख होई बिसरामू॥

सिंहलद्वीप जाते समय मार्ग में आने वाले सात समुद्रों का चित्रण भी कवि ने खूब किया है। इनमें "कान समुद्र" में धंसने पर बहुतों की क्या दशा हुई इसका वर्णन कवि करता है।

कोइ बोहित जस पौन उड़ाहीं। कोई चमकि बीजु अस जाहीं॥
कोई जस भल धाव तुखारू। कोई जैस बैल गरियारू॥
कोइ जानहुँ हरुआ रथ हाँका। कोई गारुअ मार बहु थाका॥
कोइ रेंगे जानहुँ चाँटी। कोई टूटि होहिं तर माटी॥
कोई खहिं पौन कर झोला। कोई करहिं पात अस डोला॥
कोई परहिं भौंर जल माँहा। फिरत रहहिं, कोई दे दिन बाहाँ॥
राजा का भा अगमन खेवा। खेवक आगे सुआ परेवा॥

जायसी वास्तव में प्रकृति का कवि न होकर मानव का कवि है। मानव के दु:ख सुख का जैसा सजीव चित्र जायसी अंकित करता है वैसा कम कवि कर पाये हैं। विरह-चित्रण में तो यह अपने ढंग के एकाकी ही हैं। विवाह के समय का वर्णन देखिए कितना सुन्दर चित्रण है :

रचि-रचि मानिक माँडव छावा। औ भुइँ रात बिछाव बिछावा॥
चंदन खाँभ रचे बहु भाँती। मानिक दिया बरहिं दिन राती॥
साजा राजा, बाजन बाजे। मदन सहाय दुवौ दर गाजे॥
औ राता लोने रथ साजा। भए बरात-गोवहने सब राजा॥
घर-घर बंदन रचे दुवारा। जावत नगर गीत झनकारा॥

शीश के ऊपर मांग का ही वर्णन देखिए :

बरनौं माँग सीस उपराहीं। सेंदुर अबहिं चढ़ा जेहि नाहीं॥
बिन सेंदुर अस जानहु दीआ। उजियरा पंथ रैनि महँ कीआ॥
कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनि परगसी॥
सुरुज - किरिन जनु गगन बिसेखी। जमुना माँह सुरसरी देखी॥
खडै धार रुहिर जनु भरा! करवत लेइ बेनि पर धरा॥
तेहि पर पूरि धरे जो मोती। जमुना माँझ गंग कै सोती।
करवत तपा लेहिं होइ चूरू। मकु सो रुहिर लेइ देई सेंदूरू॥

कनक दुवादस बानि होइ, चह सोहाग वह माँग।
सेवा करहिं नखत सब, उवै गगन जस गाँग॥

वर्णनात्मकता कवि की अपनी विशेषता है। अनेकों उपमाओं की झड़ी लगाकर जहाँ वह चित्रण करने बैठ जाता है वहाँ चित्र साकार हो जाता है। सिंहलद्वीप की यात्रा का चित्रण देखिए कितना वर्णनात्मक है :

करहु दीठि थिर होइ बताऊ। आगे देखि धरहु भूइँ पाऊ।
जोरे उबट होइ परै भुलाने। गए मारि, पथ चलै न जाने॥
पाँयन पहिरि लेहु सब पौरी। काँट धँसै न गड़ै अँकरौरी।
परे आइ बन परबत माहाँ। दंडा करन बीझ बन गाहाँ॥
सघन ढाक-बन चहुँ दिसि फूला। बहु दुख पाव उहाँकर भूला।
झाँखर जहाँ सो छाँडहु पंथा। हिलगि मकोय न फारहु कंथा॥

युद्ध-यात्रा का वर्णन देखिए :

हय गय सेन चलै जग पूरी। परबत टूटि मिलहिं होई धूरी।
रेनु रैनि होइ रविहिं गरासा। मानुख पंखि लेहिं फिरि बासा॥
भुइँ उड़ि अंतरिक्ख मृदु मंडा। खंड-खंड धरती बरम्हंडा।
डोलै गगन, इन्द्र डरि काँपा। बासुकि जाइ पतारहि चाँपा॥
मेरु धसमसै, समुद्र सुखाई। बन खँड टूटि खेह मिलि जाई।
अगिलन्ह कहँ पानी लेइ बाँटा। पछिलन्ह कहँ नहिं काँदो आटा॥

चित्तौड़ पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का भी वर्णन इसी प्रकार है :

बादसाह हठि कीन्ह पयाना। इन्द्र-भँडार डोल भय नाना।
नब्बै लाख सवार जो चढ़ा। जो देखा सो लोने मढ़ा॥
बीस सहस घुम्मरहिं निसाना। गलगंजहिं फेरहिं असमाना।
बैरख ढाल गगन गा छाई। चला कटक धरती न समाई॥
सहस पाँति गज मत्त चलावा। घुसत अकास, धँसत भुइँ आवा।
बिरिछ उपारि पेड़ि स्यों लेहीं। मस्तक झारि तोरि मुख देहीं॥

कोउ काहू न संभारै; होत आव डर चाप।
धरति आपु कहँ काँपै, सुरज आपु कहँ झाँप॥

आवै डोलत सरग पतारू। काँपै-धरति, न अंगवै भारू।
टूटहिं परबत मेरु पहारा। होइ-होइ चूर उड़हिं होइ छारा॥
सत खँड धरती भई षट खंडा। ऊपर अस्ट भए बरम्हडा।
गगन छपान खेह तस छाई। सूरज छपा, रैनि होइ आई॥
दिनहिं राति अस परी अचाका। भा रवि अस्त, चंद रथ हाँका।
मँदिरन्ह जगत दीप परगसे। पंथी चलत उसेरहि बसे।
दिन के पंखि चरत उड़ि भागे। निसि के निसरि चरै सब लागे॥

इसी प्रकार कवि ने अनेकों स्थलों, घटनाओं, भावनाओं और चरित्रों का वर्णन किया है। कवि की वर्णन-शैली अधिकांश रोचक ही है। बारह मासे का वर्णन कवि ने बहुत कलात्मक ढंग से किया है :

होने पर भी हास्यास्पद सा ही दीखता है। भारतीय काव्य-पद्धति में इस प्रकार के उपमानों का प्रयोग नहीं के बराबर है। यौवन के मद में पूर्ण स्त्री की चाल का हथिनी की चाल से सादृश्य अवश्य स्थापित किया गया है परन्तु वहाँ यौवन का वह विशाल रूप सामने होता है जिसका कोई मुक़ाबिला न कर सके।

सादृश्य मूलक अलंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का व्यवहार है। जायसी ने हेतुत्प्रेक्षा का बहुत ही कलात्मक प्रयोग किया है। हेतुत्प्रेक्षा में आपको कल्पना-शक्ति को विकसित करने और उड़ानें भरने का अच्छा मौका मिला है। नीचे हम कुछ अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। विद्यार्थियों के लिए ये लाभदायक सिद्ध होंगे :

हेतुत्प्रेक्षा

सहस किरिन जो सुरुज दिखाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई।

× × × ×

दारिउँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि।

—जायसी-ग्रन्थावली—पृष्ठ १०६

वस्तूत्प्रेक्षा

बरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जान दुई अनी।
जुरी राम-रावन कै सेना। बीच समुद्र भए दुइ नैना॥

× × × ×

कंचन देख कसौटी कसी। जनु घन दामिनी परगसी।
सुरुज किरन जनु गगन बिसेखी। जमुना माँह सुरसती देखी॥

—जायसी-ग्रन्थावली—पृष्ठ १०८

फलोत्प्रेक्षा

पुहुप सुगंध करहि एहि आसा। मकु हिरकाई लेइ हम पासा।

× × × ×

करवत तपा लेहि होइ चूरू। मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदुरू।

—जायसी-ग्रन्थावली—पृष्ठ १०६

व्यतिरेक

का सरवरि तेहि देउँ मयंकू। चाँद कलंकी, वह निकलंकू।
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा॥
सुवा सो नाक कठोर पँवारी। वह कोमल तिल-पुहुप सँवारी।

—जायसी-ग्रन्थावली—पृष्ठ १०६

रूपकातिशयोक्ति

राते कँवल करहिं अलि भँवा। घूमहिं भाँति चहहिं अपसवा।

× × × ×

कँवल कली तू, पदमिनि ! गइ निसि भयउ बिहानु ।
अबहूँ न संपुट खोलसि जबरे उवा जग भानु ॥

—जायसी-ग्रन्थावली—पृष्ठ ११०

सादृश्यमूलक अलंकारों के प्राय: सभी रूप हमें जायसी के काव्य में मिलते हैं। कवि ने अपने काव्य में सांग रूपकों का भी प्रयोग किया है। जायसी ने अलंकारों का प्रयोग केवल प्रयोग भर करने और भाषा-सौंदर्य वृद्धि के लिए ही नहीं किया परन्तु अपनी अभिव्यंजना शक्ति के आधार पर व्यंग प्रधान कल्पनाएँ करने पर उन्हें कलात्मक साधन बनाया है। कवि को इस दिशा में बहुत सफलता मिली है। जायसी-ग्रंथावली के प्राक्कथन में पृष्ठ ११५ पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी द्वारा प्रयुक्त अन्य अलंकारों के भी उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। विद्यार्थी यदि इस विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो वहाँ देख सकते हैं।

अर्थ-विस्तार की सहायता के लिए जायसी ने अलंकारों का सुन्दर विधान किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कवि द्वारा रस विरोधी वस्तुओं को उपमा स्वरूप प्रस्तुत करने की ओर संकेत किया है। बात वास्तव में आचार्य जी ने मार्के की पकड़ी है। विद्यार्थी इसे ध्यान से देखें :

वीर रस की सामग्री में शृंगार रस की सामग्री का आरोप :

कहौं सिंगार जैसि वै नारी। दारू पियहिं जैसी मतवारी।
सेंदुर आगि सीस उपराहीं। पहिया तरिबन चमकत जाहीं॥
कुच गोला दुइ हिरदय लाई। अंचल धुजा रहे छिटकाई।
रसना लूक रहहि मुख खोले। लंका जरै सो उनके बोले॥
अलक जंजीर बहुत गिउ बाँधे। खीचहिं हस्ती, टूटहिं काँधे।
बीर सिंगार दोउ एकै ठाऊँ। सत्रु-साल गढ़-भंजन नाऊँ॥

यहाँ शृंगार की सामग्री में वीर रस का आरोप देखिए :

जौ तुम चहहु जूझि, प्रिय ! कीन्ह सिंगार जूझ मैं साजा।
जोबन आइ सौंह होइ रोपा। पिघला बिरह काल-दल कोपा॥
भौंहें धनुष, नयन सर साँधे। बरुनि बीच काजर विष बाँधे।
अलक फाँस गिउ मेलि असूझा। अधर-अधर सो चाहहि जूझा॥
कुंभस्थल कुच दोउ मैमंता। पेलौं सौंह, सँभारहु कंता॥

ऊपर दोनों में रस विरोधी सामग्री कवि ने रखी है। जहाँ तक शब्दालंकारों की बात है कवि ने वृत्यानुप्रास, यमक तथा श्लेष का प्रयोग किया है :

अनुप्रास

भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू।

यमक

रसनहि रस नहिं एकौ भावा।

अपनी वर्णन करने की शैली को जायसी ने अलंकारों के प्रयोग से चमत्कृत किया है। अलंकारों के प्रयोग पर उनका अधिकार रहा है और जिस भाव को व्यक्त करने के लिए उन्होंने जिन अलंकारिक प्रयोगों को चुना है उसमें उन्हें सफलता मिली है।

चरित्र-चित्रण

पदमावत एक प्रेम-काव्य है जिसमें कवि ने कहीं-कहीं समय की परिस्थितियों का संकेत भर भले ही कर दिया हो, या वह उत्तरार्ध ऐतिहासिक होने के नाते आगये हों, पर कवि का लक्ष्य उस ओर नहीं रहा। किसी पात्र विशेष की किसी विशेष विलक्षणता का चित्रण करना या जाति विशेष की विशेषताएँ दिखलाना भी कवि का उद्देश्य नहीं रहा। सिंघल की स्त्रियों के सौंदर्य का वर्णन काल्पनिक है। परन्तु फिर भी उनके पात्रों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं जो कथा के साथ आप-से-आप कुछ निखर कर सामने आती हैं। यहाँ हमारा कहने का तात्पर्य केवल यही है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों में जिन पात्रों को लिया गया है उनके प्रतीकों द्वारा समाज का रूप कवियों ने चित्रित करने का प्रयास किया है। यह प्रयास हमें जायसी में दिखलाई नहीं देता, परन्तु फिर भी मानवीय प्रकृति का चित्रण पदमावत में मिलता है और उसका जो रूप सामने आता है वह काफी व्याख्या के साथ, भावना के साथ और रसात्मकता के साथ आता है।

पदमावत् के प्रधान पात्र पदमावती, रत्नसेन और नागमती हैं। इनके चरित्रों को किसी विशेष-विशेषता से बाँध कर कवि नहीं चला है। जैसे रामायण में राम का चरित्र मर्यादापुरुषोत्तम राम का है सो वह हर स्थान पर मर्यादा का ध्यान रखते हैं, लक्ष्मण का भाई-भक्ति का है तो वह उससे पीछे नहीं हटता, हनूमान का सेवक का है तो वह अपने कार्य में हर समय दृढ रहता है। नागमती, रत्नसेन या पदमावती के चरित्रों में ऐसी कोई बात नहीं जिसे देखना पड़े कि जीवन के अनेक स्थानों पर वह घटी अथवा नहीं। इनका जो साधारण रूप सामने आता है, वह प्रेमी और पति पत्नि का ही रूप है, सौंदर्य का आकर्षण है जिसे कवि ईश्वरीय सौंदर्य मान कर चल रहा है। इन पात्रों की अपनी कोई व्यक्तिगत विशेषता नहीं है।

रत्नसेन कष्ट सह सकता है, साहसी है, धीर है, यह सब लक्षण उसके अन्दर हैं। परन्तु यह लक्षण तो उस हर प्रतीक के अन्दर कवि को प्रदर्शित करने होंगे जिसे वह प्रेमी नायक बनाना चाहेगा। यह कोई रत्नसेन की व्यक्तिगत विशेषता नही रही। इसीलिए इसे उसके चरित्र का अंग मानकर उसका विश्लेषण करना व्यर्थ है। पदमावती चित्तौड़ आने से पूर्व एक यौवन-मद से पूरित प्रेमिका है जिसे पुरुष की आवश्यकता है और वह उसी की खोज के लिए हीरामन तोते से कहती है। चित्तौड़ आने पर उसके अन्दर एक सती नारी

के चरित्र का उदय होता है और अन्त में वह एक आदर्श हिन्दू पतिव्रता नारी के समान जौहर में अपना प्राणान्त कर देती है। नागमती एक साधारण स्त्री है। पतिव्रता वह अवश्य है और पति-विरह में जल-जल कर उसकी ढेरी हो जाती है। पदमती के प्रति उसके मन में डाह है और उसके रूप को वह बर्दाश्त नहीं कर सकती। इसीलिए हीरामन तोते को मरवाना चाहती है।

चरित्र-चित्रण साधारणतया लेखक तीन प्रकार का करते हैं।

१. आदर्श-चित्रण।

२. जाति-स्वभाव-चित्रण।

३. व्यक्ति-स्वभाव-चित्रण।

एक चौथे किस्म का भी सामान्य चित्रण होता है, परन्तु वह कोई विशेष बात नहीं है क्योंकि उसके द्वारा किसी विशेष वस्तु का आभास न मिलने से, न तो कोई विशेष रोचकता ही आती है और न कोई आकर्षण ही पैदा होता है।

आदर्श-चित्रण : महाकवि जायसी ने जिन पात्रों को लिया है उनमें आदर्श की स्थापना की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का विचार है कि जायसी ने एक देश व्यापी आदर्श की स्थापना की है, परन्तु हमारा मत इसके खिलाफ है। रत्नसेन के रूप में जायसी ने एक आदर्श प्रेमी का चित्रण किया है और वह भी किसी स्त्री का प्रेमी नहीं ईश्वर का प्रेमी। पदमावती को कवि ने ईश्वर का प्रतीक माना है। रत्नसेन चित्तौड़ की मोह-माया को त्याग कर, माता, स्त्री, धन, सम्पत्ति, राज, पाट सब छोड़ कर वियोगी हो जाता है। यह प्रेम-पंथ पर चलने वाले की दशा है, विरक्त दशा है। फिर पद्मावती को प्राप्त करके वह वहीं रम जाता है। लेकिन नागमती का संदेश पाकर उसमें फिर अपने सांसारिक कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता आ जाती है और वह वहाँ से उसी समय चलने को उद्यत हो जाता है।

एक ईश्वर-प्रेमी का यह चरित्र है। मीरा भी तो इसी तरह की प्रेम-दीवानी थी जिसने अपने पति को छोड़कर कृष्ण की भक्ति में लौलीन होकर राज-पाट त्याग दिया। इस प्रकार के प्रेमियों की कथाएँ कम नहीं हैं। सूफी इतिहास देखने पर बहुत से ऐसे प्रेमी मिल जायेंगे। सूर, तुलसी इत्यादि भी इसी कोटि में आते हैं। परिस्थितियाँ बदल सकती हैं, परन्तु मूल तत्त्व प्रेम और उसके पालन में फर्क नहीं आता। रत्नसेन का यह प्रेमी चरित्र कवि ने आदर्श रूप में ही प्रकट किया है और इसमें एक देशीयता की झलक देखना कवि के साथ अन्याय करना है।

यह सच है कि जायसी ने तुलसीदास की भांति अपने नायक को सर्वगुण सम्पन्न नहीं बनाया। उसने यदि प्रेम का प्रतीक रत्नसेन को प्रस्तुत किया है तो वीरता के प्रतीक स्वरूप वह गोरा बादल को लाया है। यहाँ भी मानव-प्रकृति का अध्ययन करके हम यही कहेंगे कि जायसी ने कोई भूल नहीं की। उसने चरित्र का एकांगी विकास किया है

परन्तु वह कितना व्यापक किया है यह देखते ही बनता है। रत्नसेन में वीरता, धीरता, प्रेमपरायणता, भक्ति, दया, क्षमा, शील, भावुकता, कलाप्रियता, पांडित्य, सौंदर्य, विनय, परख यह सभी कुछ नहीं है परन्तु उसके अन्दर जो कुछ भी है वह आद्योपान्त है। प्रेम का वह पुजारी है और उसका सम्बन्ध उसके जीवन के अंतिम काल तक उसके साथ चलता है। धीरता, सौंदर्य, कलाप्रियता, शील, भावुकता, विनय, यह सभी कुछ रत्नसेन के चरित्र में हैं। साधक के लिए अपने विशेष अभीष्ट की प्राप्ति में जिन गुणों की आवश्यकता है वे सब रत्नसेन में विद्यमान हैं। इससे बाहर के गुणों को व्यर्थ लाकर रत्नसेन के चरित्र से चिपकाने की कवि में लालसा नहीं थी। रत्नसेन अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए केवल सुख-भोग को त्यागने को उद्यत नहीं होता, वरन् अपने प्राणों को भी होम देने में संकोच नहीं करता। लोभ उसे छू तक नहीं गया है। सिंहलद्वीप में दहेज इत्यादि में उसे चाहे जो मिला हो परन्तु उसकी भावना और इच्छा केवल पद्मावती तक ही सीमित है। समय पड़ने पर वह वीर भी है। अलाउद्दीन का पत्र उसे युद्ध के लिए उत्तेजित कर देता है परन्तु युद्ध को पारस्परिक समझौते से टालने का भी वह कम प्रयास नहीं करता। सरल स्वभाव का व्यक्ति है। छल-छिद्र नहीं जानता।

रत्नसेनः रत्नसेन का चरित्र आदर्श प्रेम का प्रतीक है। उसमें जातिगत और व्यक्तिगत विशेषताएँ भी हैं परन्तु प्रधानता आदर्श प्रेम की ही है। वास्तव में यदि देखा जाये तो रत्नसेन के चरित्र के ये गुण प्रेम-जन्य हैं। कष्ट-सहन, नम्रता, दया, त्याग, तपस्या सब प्रेम की ही भावना के फल स्वरूप उदय होते हैं। ये उसके चरित्र के स्वतंत्र गुण नहीं है और न ही परम्परागत, जातिगत या व्यक्तिगत ही हैं। सिंहल से लौटते समय जो लोभ की भावना उसके अन्दर पैदा होती है वह व्यक्तिगत स्वभाव-जन्य है। उसका प्रेम या किसी अन्य भावना या वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं। धन के असाधारण चमत्कार पर रीझ उठना लोभ नहीं है। अपना सर्वस्व त्यागकर जोगी बन जाने वाले रत्नसेन में इस घटना को लोभ मानकर आरोपित करना भूल होगी।

रत्नसेन एक सरल प्रकृति का प्रेमी है। राजा हो गया तो क्या, राजनीति की बुद्धि उसके पास नहीं है। गोरा बादल के समझाने पर भी वह अलाउद्दीन के छल को नहीं भाँप पाता। राजा की यह उदारता और सरलता उसकी बुद्धि की गम्यता की कमी का संकेत कराती हैं। इससे राजा की अदूरदर्शिता भी झलकती है।

जहाँ रत्नसेन की जातिग। विशेषता की बात है वह प्रतिकार की भावना में है। यह राजपूतों की जातिगत विशेषता है। यह रत्नसेन में भी पाई जाती है। पद्मनी से देवपाल की दुष्टता की बात सुनकर उस पर आक्रमण करके उसे मार डालना, इसी प्रकार की घटना है।

पद्मावती : पद्मावती एक सुन्दर यौवन से पूर्ण नायिका है, जिसके अन्दर कवि ने आदर्श प्रेम की स्थापना की है। चित्तौड़ में आने से पहले वह एक आदर्श प्रेमिका

है। रत्नसेन की सूली की बात सुनकर वह अपने भी प्राण त्यागने को उद्यत हो जाती है।

इसके पश्चात् पद्मावती में एक उत्तम गृहिणी के भी लक्षण मिलते हैं। पद्मावती रत्नसेन से अधिक दूरदर्शी है। वह राघवचेतन के निकाले जाने पर भी उसे नाखुश नहीं भेजना चाहती :

ज्ञान-दिष्ट धनि अगम विचारा। भल न कीन्ह अस गुनी निकारा॥

राजा रत्नसेन के बन्दी हो जाने पर रानी गोरा बादल के पास जाती है और उनसे सहायता लेती है। यह उसकी बुद्धिमत्ता का दूसरा प्रमाण है। वह वीर है, चतुर है, गम्भीर है और साहसी भी है। योजना बनाकर पति को मुक्त करा लेना उसी का काम है।

पद्मावती में जातिगत स्वभाव की भी कमी नहीं। वह नागमती के साथ राजा रत्नसेन को रंगरलियाँ करते नहीं देख सकती। ईर्ष्या उसमें कम नहीं और यह स्त्री-जाति का सामान्य स्वभाव भी है।

पद्मावती का सब से चमत्कृत रूप उसके सती के स्वरूप में विद्यमान है। एक आदर्श भारतीय नारी का महान् आदर्श वह पालन करती है और अपने पति की मृत्यु पर जलकर स्वाहा हो जाती है। हिन्दू नारी का चरम उत्कर्ष सतीत्व में ही है। लोकोत्तर दिव्य प्रेम की कसौटी पर वह खरी उतरती है।

नागमती : नागमती एक रूपवती स्त्री है और उसे अपने रूप पर गर्व है। वह अपने रूप को पद्मावती से भी अधिक मानती है। यह स्त्रियों की जातिगत विशेषता है। हर स्त्री अपने को रूपवान समझती है। वह पतिव्रता स्त्री है; पतिपरायण है। अंत में पति के मरने पर आदर्श हिन्दू नारी के समान सती हो जाती है।

राघव चेतन : यह तांत्रिक है, भूत, प्रेतों की पूजा करता है। कोमल वृत्ति इसके अन्दर है ही नहीं। पंडित कवि उसे कहा अवश्य गया है परन्तु उसमें विवेक की भावना का नितान्त अभाव है। वह लोभी और कृतघ्न है। अहंकार की भावना उसमें आवश्यकता से अधिक है। जिस रत्नसेन के यहाँ वह पला उसी के साथ विश्वासघात किया और अलाउद्दीन को उसके विपरीत उत्तेजित किया। जिस पद्मावती से अमूल्य वस्तु पुरस्कार स्वरूप लेकर गया उसी को बलात छीनने की उसने अलाउद्दीन को प्रेरणा दी। अलाउद्दीन जैसे लंपट से जाकर मिलना उसकी हीन वृत्ति का ही द्योतक है।

राघवचेतन की नीच मनोवृत्ति की वह पराकाष्ठा है जब उसके द्वारा रत्नसेन को बन्दी बनाने का संकेत किया जाता है।

गोरा बादल : ये दोनों क्षत्रियोचित वीरता के प्रतीक हैं। रत्नसेन से अच्छे सम्बन्ध होने पर भी पद्मावती के कहने पर अपने प्राणों को खतरे में डालकर मैदान में उतर पड़ना

उनका जातिगत तथा व्यक्तिगत गुण है। इनमें वीरता, दूरदर्शिता, सहृदयता तथा स्वाभिमान की भावना मिलती है।

इनके अतिरिक्त जो अन्य पात्र हैं वे बहुत ही गौण रूप से आते हैं। उनके स्वभावों का एक-एक पहलू ही कवि ने कथा से सम्बन्ध रखने वाला लिया है। जैसा ऊपर भी हम स्पष्ट कर चुके हैं, कवि ने चरित्र-चित्रण की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया है, यानी दिया ही नहीं। कथा का एक प्रवाह है और प्रेमाधीन भावनाओं का उद्रेक है, घटनाएँ हैं बस इन्हीं की रगड़ से कहीं-कहीं चरित्र आप-से-आप निखरने लगते हैं। परन्तु फिर भी उन पर वह निखार नहीं आता जो आना चाहिए। पाठक पर कथा का प्रभाव पड़ता है, उसके भावनात्मक स्थलों को पढ़कर वह झूम उठता है और यदि कोई व्यक्ति सूफ़ी धर्म से प्रेरित है तो उस पर सिद्धान्तों का भी शायद कोई असर हो, पर उसके मस्तिष्क की विचार धारा और कल्पना तथा अनुभूति में पात्र सजग होकर सामने नहीं आते। आते हैं तो वही कथा, घटनाओं और भावनाओं के झमेलों में लिपटे हुए।

सारनिरूपण

जायसी की रचनाओं में भावना-तत्व की प्रधानता और बुद्धि-तत्व का अभाव है। भावना-तत्व के अंतर्गत प्रेम का निरूपण कवि ने किया है। प्रेम में कवि ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को निखारा है। सफलता कवि को दोनों पक्षों में मिली है, परन्तु संयोग की अपेक्षा वियोग का चित्रण कवि अधिक कलात्मक ढंग से कर सका है। इसमें उसे असाधारण सफलता मिली है। विरह का तो कवि ने पद्मावत के अन्दर मानो सागर ही भर दिया है। शृंगार का चित्रण कवि ने बहुत ही सफलता से किया है।

कवि की कल्पना और अनुभूति, यह सच है कि, सभी जगह मानसिक विकारों के चरम उत्कर्ष तक नहीं पहुँचती और उसका क्षेत्र भी बहुत व्यापक नहीं है, परन्तु जिस क्षेत्र में वह चित्रण करता है वहाँ भावपूर्ण उत्कर्ष तक पहुँच जाता है।

कवि का कल्पना-तत्व काफी साफ और निखरा हुआ तथा लम्बी उड़ानें लेने वाला है। पद्मावत का पूर्वार्ध केवल कल्पना पर ही आधारित है। काल्पनिक चित्र अंकित करने में भी कवि ने अपनी वर्णन-शैली द्वारा काव्य में जान डाल दी है। समुद्रों का वर्णन, सिंहलद्वीप का वर्णन, समुद्र की बेटी का वर्णन, तोते का यहाँ आना और उसे गुरू के रूप में प्रतिष्ठित करने का वर्णन, ये सब कल्पना की ही चीजें हैं, जिन्हें चित्रित करते समय कवि ने श्रंखला, क्रम, भावना और काव्य-सम्बन्धी अन्य सभी आवश्यक बातों का ध्यान रखा है।

जायसी का प्रधान ग्रन्थ पदमावत एक प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्ध-काव्य में मानव-जीवन की पूर्ण विवेचना और घटनाओं की सम्बद्ध श्रंखला रहती है। अनेकों प्रकार के भावों की रसात्मक अभिव्यक्ति प्रबन्ध काव्य में मिलती है। जायसी के ग्रन्थ में यह सब कुछ

वर्तमान है। उसका काव्य इति वृत्तात्मक तथा रसात्मक दोनों शैलियों का अनुकरण करता हुआ चलता है।

जायसी के काव्य में सम्बन्ध-निर्वहण भी बहुत कलात्मक और सुन्दर हुआ है। प्रसंगों की श्रृंखला और कथा का प्रवाह कहीं पर भी नहीं टूटता। कवि की विवरण देने की शक्ति अपार है और बहुत ही सजीव चित्र अंकित करती है।

कवि की वर्णन-शैली प्रभावात्मक है। कुछ गति रुकने वाले भी स्थल आ जाते हैं, जहाँ कवि व्यर्थ की जानकारी कराने लगता है, परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। अधिकांश स्थलों का वर्णन बड़ा ही रोचक और चित्ताकर्षक है। अलंकारों के प्रयोगों द्वारा कवि ने वर्णन खूब किये हैं।

कवि ने अपने काव्य में सादृश्य मूलक अलंकारों का ही अधिक प्रयोग किया है और उनमें भी विशेष रूप से उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक इत्यादि का। शब्दालंकार भी काव्य में आये हैं परन्तु उधर कवि का प्रयास प्रतीत नहीं होता।

कवि की शैली का आभास उक्त सभी बातों पर एक साथ विचार करने से हो जाता है। 'अंत में चरित्र-चित्रण पर भी एक दृष्टि डालने से पता चलता है कि कवि का काव्य लिखने का उद्देश्य आदर्श पात्र प्रस्तुत न करके आदर्श प्रेम की स्थापना करना ही है। कवि को इसमें सफलता मिली है। उसने प्रेम का जो स्वरूप खड़ा किया है वह रत्नसेन और पद्मावती के चरित्रों से स्पष्ट हो जाता है।' चरित्र-चित्रण की ओर कवि का विशेष ध्यान न रहने पर भी वह सुन्दर बन पड़ा है। कवि को इस दिशा में भी हम सफल ही कहेंगे, भले ही वह गोस्वामी तुलसीदास की भांति कोई महान् चरित्र हिन्दी साहित्य को न दे सके या सूर जैसा सखा प्रस्तुत न कर सके।

संक्षिप्त

१. जायसी के काव्य में बुद्धि-तत्व कम है।
२. जायसी के काव्य में भावना-तत्व की प्रधानता है।
३. जायसी का कल्पना-शक्ति पर अधिकार था।
४. जायसी के पद्मावत में प्रबन्धात्मकता की कमी नहीं।
५. कवि ने सम्बन्ध-निर्वहण पद्मावत में बहुत सुन्दर और सुव्यवस्थित किया है।
६. कवि में वर्णन करने की क्षमता है।
७. कवि ने सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग किया है।
८. कवि कोई सर्वाङ्गी महान् चरित्र पद्मावत द्वारा प्रस्तुत नहीं कर सका, परन्तु अपने आदर्श की स्थापना के लिए उसे जिन पात्रों की आवश्यकता थी उन्हें वह काव्य में सफलता पूर्वक ला सका है।

अध्याय ५

जायसी का आध्यात्मिक तत्व-निरूपण

उपासना : 'मलिक मुहम्मद जायसी निराकार ब्रह्म के मानने वाले थे। मुसलमान होने के नाते उनका मूर्ति-पूजा या द्वैतवाद में विश्वास हो ही नहीं सकता था। फिर भी जायसी पर वैष्णव सहृदयता का प्रभाव था और उनका झुकाव साकारोपासना की ओर स्पष्ट दिखलाई देता था। जायसी परमात्मा को असीम सौंदर्य, गुण और शक्ति का भंडार मानते हैं। सूफियों का अद्वैतवाद मुसलमानी देशों में एक क्रांति का संदेश था। पैगम्बरी एकेश्वरवाद से यह 'अनलहक, की भावना सर्वथा भिन्न थी। एकेश्वरवाद कुछ नहीं है, स्थूल देववाद का दूसरा नाम है। अद्वैत आत्मवाद या ब्रह्मवाद है और इसी का स्वरूप हमें सूफी मत में देखने को मिलता है। एकेश्वरवाद और अद्वैत्वाद की कल्पनाओं में आकाश पाताल का अन्तर है। अद्वैतद्वैत की कल्पना एक चिंतन का विषय है, योंही कल्पनाभर कर लेने का नहीं। अद्वैत की इस शक्ति को विचार और भावना दोनों से प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ एक ओर कबीर ने विचार और भक्ति दोनों का आश्रय लिया वहाँ जायसी ने केवल भावना तक ही उसे सीमित कर दिया और विशुद्ध प्रेम को उसका आधार बनाया। सूफी धर्म ने, मुसलमानी धर्म में कुछ मानी जाने वाली 'मैं ब्रह्म हूँ' की भावना का समर्थन किया। सूफी लोग कट्टर मुससमानों द्वारा काफिर समझे जाते थे।

सूफी धर्म में कोई किसी किस्म का आडम्बर नहीं था। बिना पैगम्बर की सहायता के मोक्ष नहीं मिल सकता, इस बात का भी सूफी लोगों ने खंड़न किया। कर्म-काण्ड में इन्हें विश्वास नहीं था। संस्कारों को ये मानते नहीं थे।' सूफी लोग अपनी इन मन्यताओं का जनता में प्रचार कथाएँ कह-कह कर करते थे। इस तरह की विरोधी विचारधारा रखने पर सूफी फकीर मंसूर को सूली पर लटकना पड़ा।

सूफी धर्म का आदिकाल: सूफी लोग आरम्भ में फकीर ही थे, जो बहुत सादा जीवन व्यतीत करते थे और टूटी दशा में रहते थे। ईश्वर के प्रेम में लीन, भूख-प्यास सहते हुए ये कम्बल ओढ़े देश-विदेश घूमा करते थे। दीनता, नम्रता और प्रेम इनके जीवन के प्रधान गुण थे। धीरे-धीरे इनका ध्यान साधना के मानसिक पक्ष की ओर अग्रसर

हुआ और वहाँ पहुँचकर इन्होंने देखा कि इस्लाम वास्तव में आत्मा की शुद्धि की ओर अग्रसर न होकर बाह्य विधानों की ओर बढ़ता जा रहा है। यह स्थिति उन्हें चिंता-जनक दिखलाई दी। धीरे-धीरे उनमें उन धार्मिक मान्यताओं के प्रति उदासीनता आने लगी जिनका आत्मिक उत्थान से कोई सम्बन्ध न होकर केवल धार्मिक वाह्याडम्बर से ही सम्बन्ध था। अंतःकरण की पवित्रता का राग इन लोगों ने जनता में अलापना शुरू किया और प्रेम के मधुर वातावरण से जनता पर जादू करने लगे। इस चिन्तन-पद्धति का विकास मुहम्मद साहब के लगभग ढाई हजार वर्ष बाद हुआ। इस चिंतन ने विचारकों को एकेश्वरवाद के संकुचित दायिरे से उठाकर अद्वैतवाद के विस्तृत दायिरे में ले जाकर खड़ा कर दिया। कुरान शरीफ की व्याख्या इन लोगों ने अपने ढंग से की। कुरान की कुछ आयतों में इन्हे अद्वैतवाद की झलक दिखलाई दी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूफी धर्म के अद्वैतवाद के मूल में भारतीय सिद्धान्तों को पाते हैं। वह लिखते हैं, "सूफियों को अद्वैतवाद पर लाने वाले प्रभाव अधिकतर बाहर के थे। खलीफा लोगों के जमाने में कई देशों के विद्वान बगदाद और बसरे में आते जाते थे। आयुर्वेद्, दर्शन, ज्योतिष, विज्ञान आदि के अनेक ग्रन्थों का अरबी में भाषांतर भी हुआ। यूनानी भाषा के किसी ग्रन्थ का अनुवाद अरस्तू के सिद्धान्त के नाम से अरबी भाषा में हुआ जिसमें अद्वैतवाद का दार्शनिक रीति पर प्रतिपादन था। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के वेदान्त-केसरी का गर्जन भी दूर-दूर तक गूँज गया था। मुहम्मद बिन कासिम के साथ आये हुए कुछ अरब सिंध में रह गये थे। इतिहासों में लिखा है कि वे और उनकी संतति ब्राह्मणों के साथ बहुत मेल जोल से रही। इन अरबों में कुछ सूफी भी थे जिन्होंने अद्वैतवाद का ज्ञान प्राप्त किया और साधना की बातें भी सीखीं। सिंध में अबूअली प्राणायाम की विधि (पास ए-अन-फास) जानते थे। उन्होंने बायजीद को 'फना' (गुजर जाना यानी अहंभाव का सर्वथा त्याग और विषय वासना की निवृति) का सिद्धान्त बताया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस 'फना' में बौद्धों के निर्वाण प्रति की ध्वनि थी। बलख और तुर्किस्तान आदि देशों में बौद्ध सिद्धान्तों की गूँज तब तक कुछ बनी हुई थी। बहुत से शक और तुरूष्क उस समय तक बौद्ध बने हुए थे और पीछे भी कुछ दिनों तक रहे। चंगेज खाँ बौद्ध ही था। अलाउद्दीन के समय में कुछ ऐसे मंगोल भारतवर्ष में भी आकर बसे जो 'नये बने हुए मुसलमान' कहे गये हैं।"

कुछ उल्लेखनीय मान्यताएँ

सूफी सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य को चार भागों में बाँटा जाता है :

१. नफ्स (इन्द्रिय सम्बन्धी)

२. रूह (चित् या आत्मा)

३. कल्ब (हृदय)

४. अक्ल (बुद्धि)

एक सूफी साधक को अपने पहिले भाग अर्थात् नफ्स से हर समय युद्ध करते हुए जीवन में आगे बढ़ना है। नफ्स का प्रभाव इन्सान पर गालिब नहीं आ जाना चाहिए, बल्कि उसके दमन में ही उसका उत्थान निहित है। भारतीय आदर्शों में इसे हम इन्द्रियों का दमन कहेंगे अर्थात् इन्द्रिय जन्य सुखों के वशीभूत होकर मनुष्य को अपने जीवन के वास्तविक सुखों को नहीं खराब कर देना चाहिए और उन्नति के रास्ते से नहीं हट जाना चाहिए।

'सूफी साधक अपनी साधना के पथ पर रूह अर्थात् आत्मा और कल्ब यानी हृदय की सहायता से ही आगे बढ़ता है। विशुद्ध हृदय लेकर जब शुद्ध आत्मा इंद्रियों पर काबू करके परब्रह्म की शक्ति को पहिचानती है तो उसे अपने कल्ब में ही उसके दर्शन हो जाते हैं। हृदय का भीतरी तल 'सिर्र' भी कुछ सूफी साधक मानते हैं। सूफी कल्ब को भूतातीत पदार्थ मानते हैं। वह एक दर्पण है जिस पर संसार की सब चीजों का अक्स पड़ता है और वे चीजें उसमें प्रतिबिम्बित हो उठती हैं। सूफी मत के अनुसार आत्मा ज्ञान है और कल्ब वह दर्पण है जिस पर आत्मा के भाव-चित्र चित्रित हो उठते हैं। यही बिंब सम्बन्ध आत्मा और परमात्मा का है।'

शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह ने अपनी 'रिसालए हकनुमां में चार दुनियाँ का वर्णन किया है।

१. आलमे नासूत (भौतिक जगत)

२. आलमे मलकूत (आत्म जगत् या चित जगत्)

३. आलमे जबरूत (आनन्द जगत्। वह जगत जहाँ सुख दुख कुछ नहीं है। ब्रह्म का जहाँ मिलन हो जाता है।)

४. आलमे लाहूत (ब्रह्म)

दाराशिकोह लिखता है, "दृश्य जगत् में जो नाना रूप दिखाई पड़ते हैं वे तो अनित्य हैं पर उन रूपों की जो भावनाएँ होती हैं वे अनित्य नही हैं। वे भाव-चित्र नित्य हैं। उसी भावचित्र जगत् (आलमे मिसाल)से हम आत्मजगत् को जान सकते हैं जिसे 'आलमें ैब' और 'आलमे ख्वाब' भी कहते हैं। आँख मूंदने पर जो रूप दिखलाई पड़ता है वही उस रूप का आत्मा या सार सत्ता है। अतः यह स्पष्ट है कि मनुष्य की आत्मा उन्ही रूपों की है जो रूप बाहर दिखाई पड़ते हैं, भेद इतना ही है कि अपनी सार-सत्ता में स्थित रूप पिंड या शरीर से मुक्त होते है। सारांश यह कि आत्मा और बाह्य रूपों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब सम्बन्ध है। स्वप्न की अवस्था में आत्मा का यही सूक्ष्म रूप दिखलाई पड़ता है जिसमें आँख, कान, नाक आदि सबकी वृत्तियाँ रहती हैं, पर स्थूल-रूप नहीं रहते।"

जायसी-ग्रन्थावली—पृष्ठ १३८, भूमिका-भाग।

उक्त चारों जगतों में प्रथम संसार है और दूसरे तीन सच्चिदानन्द के रूपान्तर हैं। सूफी 'सत्' को चरम पारमार्थिव सच्चा मानते हैं।

इस तरह साधक का कल्ब, यह दर्पण, जितना स्वच्छ और निर्मल होगा, उस पर उतना ही स्पष्ट और साफ़ चित्र भी अंकित होगा।

सूफ़ीमत का स्वरूप हमारी भक्ति की परम्परा से बहुत अधिक मेल खाता है। जहाँ तक साधना का सम्बन्ध है वहाँ तक ब्रह्म और जगत् ये दो पृथक वस्तुएँ हैं। महाकवि जायसी पर वेदान्त के 'प्रतिबिंबवाद' का प्रभाव है। इसी के सिद्धान्तों के आधार पर वह संसार को दर्पण मानता है और इस दर्पण पर भगवान् परब्रह्म का अक्स पड़ता है। परमात्मा के नित्य स्वरूप के अंतर्भूत करने के लिए जायसी ने कल्ब को भी आत्मा के ही समान अभौतिक कहा है। यही प्रेम या भक्ति-भावना का आधार है। जब हृदय भौतिक भावनाओं का स्थान न रह कर अभौतिक भावनाओं और कल्पनाओं का गढ़ बन जाता है तो उसके अन्दर सांसारिक आकर्षण या प्रलोभन घुस ही नहीं पाते। भक्ति की साधना ने हृदय को स्वच्छ बनाकर भगवान् के रहने का स्थान बना दिया है। अब यह सांसारिक मनुष्य का हृदय न रहकर परमात्मा का हृदय हो गया और इस प्रकार मनुष्य की सत्ता को परोक्ष का सहारा मिला, बल मिला।

प्रेम और भक्ति की यह कल्पना प्रारम्भ में ईसाई धर्म से उद्‌भूत मानी गई, ऐसा पश्चिमी विद्वान काफी दिन तक मानते रहे। परन्तु वास्तव में इसका मूल स्रोत भारतीय 'भागवत'-प्रभाव है जिसके आधार पर यहाँ कई सम्प्रदाय बने और श्रोत प्रवाहित हुआ। इस भावना के आधार पर मानव-हृदय भगवान को समर्पित कर दिया गया और दोनों में तादात्मय स्थापित हो गया। यहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, "परन्तु व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र से बाहर उस हृदय की खोज नहीं की गई। केवल इतने ही से संतोष कर लिया गया कि ईश्वर शरणागत भक्तों के पापों को क्षमा करता है और सब प्राणियों से प्रेम रखता है। इतने से ईश्वर और मनुष्य के व्यवहार के बीच के व्यवहार में अभिव्यक्त होने वाले तथा लोक-रक्षा और लोक-रंजन करने वाले हृदय की ओर ध्यान न गया। लोक में जिस हृदय से दीन दुखियों की रक्षा की जाती है, गुरुजनों का आदर सम्मान किया जाता है, भारी-भारी अपराध क्षमा किये जाते हैं, अत्यन्त प्रबल और असाध्य अत्याचारियों का ध्वंस करने में अद्‌भुत् पराक्रम दिखाया जाता है, नाना कर्तव्यों और स्नेह-सम्बन्धों का अत्यन्त भव्य निर्वाह किया जाता है, साराश यह कि जिससे लोक का सुखद परिचालन होता है, वह भी उसी एक 'परम हृदय' की अभिव्यक्ति है, इसकी अभिव्यक्ति भारतीय पद्धति में ही हुई।"

निर्गुण-पंथी जनता को इस लोक-रक्षा की भावना से प्रथक करते जा रहे थे सूफी सिद्धान्तों के मूल में भी हमें यह भावना नहीं मिलती परन्तु जायसी ने अपने प्रेम-तत्व को जिस साँचे में ढाला है, वह पूर्ण रूप से भारतीय भक्ति-पद्धति से मेल खाता

है।' अलाउद्दीन की कल्पना चाहे उतनी भारी न हो जितनी रावण की और पद्मावती तथारत्नसेन की है, चाहे वे तत्व न मिलते हों जो राम और सीता में मिलते हैं, लेकिन ढाँचा बिल्कुल वही है, भावना भी वही है। अन्त में अन्तर अवश्य है क्योंकि कथा का उत्तरार्ध ऐतिहासिक है, इसलिए कवि इतिहास-विमुख होकर काव्य की स्वाभाविकता नष्ट नहीं कर सकता था।

ऊपर कही गई बातें सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखती हैं और उन मान्यताओं से जिनके आधार पर सूफी सिद्धान्त पनपा और जिनकी नीवों पर वह मजबूत इमारत बनकर खड़ा हुआ। अब रही उसके ढांचे की बात। सूफी धर्म के ढाँचे के भी विद्वानों ने चार विभाजन किये हैं। इन्हें हम परमानन्द-प्राप्ति के मार्ग की चार सीढ़ियाँ या पड़ाव, भी कह सकते हैं। अंतिम पड़ाव भगवान् के पास है :

१. **शरी** : (कर्म-काण्ड।)
२. **तरीकत** : (हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान् का ध्यान।)
३. **हकीकत** : (सत्य का सम्यक् बोध अर्थात् त्रियकालज्ञ हो जाना।)
४. **मारिफत** : (सिद्धावस्था, जहाँ आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।)

अखरावट में जायसी इनका उल्लेख इस प्रकार करते हैं :

कहो सरीअत चिस्ती पीरू। उधरित, असरफ औ जहँगीरू॥
राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुडूकी॥

जायसी का शरीअत में विश्वास था। वह समझते थे कि वह धर्म की पहिली सीढ़ी है और उस पर पैर रखे बिना कोई भी व्यक्ति दूसरी सीढ़ी तक पहुँच ही नहीं सकता।

"सांची राह 'सरीअत' जेहि बिसवास न होई॥
पाँव रखै तेहि सीढ़ी, निभरम पहुँचे सोई॥

इस प्रकार जायसी के मतानुसार पहिले 'शरी' का पाबन्द होना इन्सान के लिए आवश्यक है। परमात्मा से मिलन की इच्छा रखने वाले इन्सान के लिए यह पहिली आवश्यकता है, पहिली मंजिल है, पहिली सीढ़ी है। दूसरी स्थिति 'तरीकत' की है, यहाँ प्रेमी अपना सम्बन्ध बहिर जगत् से कम करके अन्तर की साधना की ओर झुकता है।

इसके बाद उसे चाहिए कि वह हकीकत को पहिचाने, अर्थात् वह क्या है, संसार क्या है, वह कहाँ से आया है, उसे कहाँ जाना है, सुख क्या है, दुःख क्या है, शांति कहाँ है, आनंद क्या है और कैसे प्राप्त हो सकता है। परमात्मा का ज्ञान होना और उससे तादात्म्य होना भी इसी सीढ़ी पर आवश्यक है। अन्तिम स्टेज 'मारफ़त' की है जहाँ आत्मा तथा परमात्मा में कोई भेद नहीं रहता। दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। आत्मा परमात्मा और परमात्मा आत्मा हो जाती है। यही सिद्धावस्था है, जिसे कबीर ने प्राप्त किया परन्तु ज्ञान से; सूर, मीरा और रसखान ने प्राप्त किया भक्ति से; मंसूर ने पाया प्रेम से :

किया दावा अनलहक का
हुआ सरदार आलम का,
अगर चढ़ता न सूली पर
तो वह मंसूर क्यों होता ?

ये चारों स्थितियाँ नफ़्स के साथ जिहाद बोलकर यानी उससे युद्ध करके प्राप्त की जाती हैं। इन्द्रियों का दमन तो भारतीय भक्ति में भी आवश्यक माना है। ज्ञान मार्गी तो इस पर बहुत ही बल देते हैं और हठयोगी इन्द्रियों को मदारी की तरह अपने संकेत पर नचाते हैं। इन्सान नफ़्सों से टक्कर लेता हुआ परमात्मा की ओर बढ़ता है। यही 'तरीका' है उस ओर चलने का। इसमें उसे कष्ट-सहन, एकांतवास, मौन आदि का सहारा लेना होता है। इस मार्ग में कुछ कठिनाइयाँ आती हैं। उन्हें पर्वत के रूप में कवि चित्रित करता है। ये 'मुकामात' हैं जिन्हें पार करने के लिए धर्म से काम लेना होता है। परमात्मा के अनुग्रह से ये पहाड़ भी पार कर लिये जाते हैं। रत्नसेन के मार्ग में इस प्रकार की अवस्थाएँ आती हैं। पहाड़ ही नहीं भयंकर समुद्र को पार करना भी इसी प्रकार की रुकावटें हैं।

सूफ़ी सिद्धान्ताचार्यों ने प्रेम में ब्रह्म की स्थिति मानी है या यों कहें कि ब्रह्म प्रेम ही है। हृदय में प्रेम का साम्राज्य स्थापित हो जाने पर फिर परमात्मा से तादात्म्य न हो, यह सम्भव नहीं। सृष्टि के आदि में अद्वैत ब्रह्म एक था और जब उसे अपने प्रेम की सृष्टि देखने की इच्छा हुई तो उसने 'आदम' को बनाया। आदम ब्रह्म का शून्य से बनाया हुआ उसका अपना प्रतिरूप था या विश्व में एक प्रतिबिम्ब भी उसे कह सकते हैं। इस तरह आदम ब्रह्म का प्रतिनिधि बनकर विश्व में आया और इस सृष्टि की रचना हुई। अब ईश्वर-तत्व से मनुष्य-तत्व प्रथक हो गया। परन्तु इन दोनों में सूफ़ी आचार्यों ने भेद माना है। दोनों मिलकर एक तो हो जाते हैं परन्तु ऐसे नहीं जैसे समुद्र में बूँद; बल्कि इस तरह जैसे शराब में पानी। ईश्वर-तत्व 'लाहूत' है और मनुष्य-तत्व 'नासूत' है। यहाँ सूफ़ी-दर्शन फिर भारतीय भक्ति-दर्शन से थोड़ा पीछे रह जाता है। लेकिन 'अनलहक' की बात यहाँ भी आ जाती है। इसका अर्थ है कि मैं ही परमात्मा हूँ। आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है और दोनों का मिल जाना 'हुलूल' कहलाता है। यहाँ फिर सूफ़ी दर्शन भारतीय बहुद्वैतवाद के निकट आ जाता है; क्योंकि जिस प्रकार आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है उसी प्रकार संसार में रहती हुई विशुद्ध आत्मा के अन्दर परमात्मा भी उतर आता है, दोनों का अन्तर समाप्त हो जाता है और फिर उन दोनों के एक होने पर, वह आत्मा अन्य सांसारिक व्यक्तियों से ऊपर उठ जाती है, उसमें संसार की जड़ता नहीं रहती, संकुचित भावनाएँ नष्ट हो जाती हैं, स्वार्थ से वह ऊपर उठ जाता है और भौतिक आनन्द और सुख की ओर से उसकी आँखें बन्द होकर आत्मिक सुख तथा शांति के क्षेत्र में खुलनी प्रारम्भ हो जाती हैं। इब्न अरबी ने 'लाहूत' और 'नासूत' की व्याख्या की है

और दोनों को एक ही परम सत्ता के दो रूप माना है । निर्गुण और सगुण से ऊपर परम-ब्रह्म की वेदान्तिक विचारधारा का ही यह दूसरा रूप है ।

सूफी मत का अद्वैतवाद इस प्रकार भारतीय दर्शन से भिन्नता रखता हुआ भी बहुत कुछ उसके निकट है । सूफी परम सत्ता को चित्स्वरूप मानते हैं और जगत् अभ्यास मात्र है । महाकवि जायसी पर केवल सूफी अद्वैतवाद का ही प्रभाव नहीं है बल्कि उनपर भारतीय वेदान्त का भी पूर्ण प्रभाव है । भारतीय मत मतान्तरों का आभास उनमें मिलता है । निर्गुण ब्रह्म की भावना मुसलमानी कल्पनाओं में भी नहीं मिलती । कयामत के दिन जीवों, मुहम्मद साहब वगैरह के बीच परमात्मा का आना ही साकार कल्पना है और यहीं पर उसका मूर्त्त रूप स्थापित हो जाता है । सच यह है कि निर्गुण कल्पना विचार के क्षेत्र में चाहे भले ही पूर्ण मालूम होती हो परन्तु भक्ति और प्रेम के क्षेत्र में तो वह अपूर्ण है ही । सूफियों ने ब्रह्म-वर्णन पूर्णरूप से लौकिक उपकरणों को लेकर किया है । मुसलमानी धर्म ने प्रतीकोपासना और प्रतिमा-पूजन का खंडन और घोर विरोध किया है । इस प्रकार भारतीय पूजा-सिद्धान्तों का मुसलमानी पैगम्बरवादी लोगों द्वारा मुकाबिला किया गया । परन्तु, सूफी धर्मावलम्बियों ने उसका इस प्रकार विरोध नहीं किया । उदार वृत्ति वाले सूफियों को यह विरोध निस्सार ही जचा और उन्होंने उस कट्टर पंथी मार्ग को नहीं अपनाया । बुत-परस्ती के खिलाफ उठने वाले जिहाद को सूफी विचारकों ने रोका । फारसी की शायरी में इस प्रकार के अनेकों उदाहरण मिल जायेंगे । इन विचारकों ने अपने प्रियतम का खयाली बुत बनाया और उसकी पूजा की, उससे इश्क किया । हुस्नेबुताँ खुदा का नूर था, जिसका सूफियों ने चित्रण किया है । इस बुत के सामने सिजदः होने लगा और शायरी में शराब का भी दौर चला । खुदा को मैखाने तक ले जाया गया और मस्जिदों में मुल्लाओं द्वारा धर्म के बनाये हुए रूढ़िवादी बंधनों का खंडन हुआ । शायरों ने इस दिशा में काफी काम किया । उर्दू के मशहूर शायर गालिब का यह कलाम इस दिशा में देखिए :

जाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठ कर ।
या वह जगह बता दे जहाँ पर खुदा न हो ।।

ब्रह्म और जगत् : जायसी ने ब्रह्म और जगत् पर भी प्रकाश डाला है । यह विचार वेदान्त से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है । 'जायसी जगत् की अलग सत्ता को छाया स्वरूप में मानते हैं । सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्म द्वारा की गई है ।' पद्मवात के स्तुति-खंड में इसका साधारण क्रम-सा प्रतीत होता है परन्तु वह सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर कोई क्रम नही है । कवि यों ही भावना में बह कर गिनाता चला गया है । सृष्टि का ब्रह्म से अप्राथक्य वह इस प्रकार वर्णन करता है :

जब चीन्हा तब और न कोई । तन मन, जिउ जीवन सब कोई ॥
'हौं हौं' कहत धोख इतराहीं । जब भा सिद्ध कहाँ परछाहीं ? ।।

सृष्टि केवल भ्रांत ज्ञान है। उसकी प्रथक से कोई सत्ता नहीं है। जो कभी न मिटने वाला तत्व है वह ब्रह्म ही है। वेदान्त में प्रतिबिम्बवाद, सृष्टिवाद, अवच्छेदवाद और अज्ञातवाद इत्यादि कई वाद चलते हैं जिन पर विचारकों ने विस्तार के साथ विचार किया है और उनका विवेचन भी। जायसी पर वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद का प्रभाव पड़ा है। प्रतिबिम्बवाद का अर्थ यह है कि यह जगत् ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है। अलाउद्दीन पद्मनी के रूप को देखकर कहता है :

देखि एक कौतुक हौं रहा। रहा अन्तरपट पै नाहिं अहा॥
सरवर देखि एक मैं सोई। रहा पानि औ पान न होई॥
सरग आइ धरती मँह छावा। रहा धरनि पै रहत न आवा॥

प्रकृति की दो शक्तियाँ आवरण और विक्षेप होती हैं। आवरण ब्रह्म और जगत् के बीच एक पर्दा है जिसे चीरकर ही सांसारिक दृष्टि ब्रह्म के दर्शन कर सकती हैं। प्रकृति की दूसरी शक्ति विक्षेप है जिसके द्वारा वह ब्रह्म के अनेकों प्रतिबिम्ब जगत् में प्रस्तुत करती है। इस प्रकार सृष्टि अपना प्रथक अस्तित्व कायम करती है, जिसे पहिचानना और उससे ऊपर उठकर ब्रह्म तक पहुँचना ही साधक का कार्य है। जायसी ने प्रेम द्वारा ही इस आवरण को चीरने का मार्ग सुझाया है और उसी के द्वारा सृष्टि की बुदबुद स्वरूप दिखलाई देने वाली चीजों की निस्सारता की ओर भी संकेत किया है। आवरण के विषय में कवि लिखता है :

आपुहि आपु जौ देखै चहा। आपनि प्रभुत आपु से कहा॥
सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन, आपुहि देखा॥
आपुहि बन औ आप पखेरू। आपुहि सौजा, आप अहेरू॥
आपुहि पुहुप फूलिबन फूलै। आपुहि भंवर बास रस भूलै॥
आपुहि घट-घट मंह मुख चाहै। आपुहि आपन रूप सराहै॥
दरपन बालक हाथ, मुख देखै, दूसरा गनै॥
तस भा दुई एक साथ, मुहमद एकै जानिए॥

उक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी दृष्टा और 'दृश्य' में कोई भेद नहीं मानते, अर्थात् अद्वैत की भावना की पुष्टि करते हैं।'

जायसी समस्त संसार को नाशवान मानते हैं। उनकी दृष्टि में केवल ब्रह्म ही नाश न होने वाला है।

सबै नास्ति वह अहथिर, ऐस साज जेहि केर।
एक साजै औ भाँजै, चहै सँवारै फेर॥
अलख अरूप अबरन सो कर्ता, वह सब सौं, सब ओहि सो बर्त्ता॥
परगट गुपुत सो सरब बियापी। धरमी चीन्ह, न चीन्हें पापी॥

ना ओहि पूत न पिता न माता । ना ओहि कुटुम्ब न कोई संग नाता ॥
जना न काहु, न कोई ओहि जना । जहँ लगि सब ताकर सिरजना ॥
वै सब कीन्ह जहँ लगि कोई । वह नहिं कीन्ह काहुकर होई ॥
हुत पहिले अरु अब है सोई । पुनि सो रहै रहै नहिं कोई ॥
और जो होई सो बाउर अंधा । दिन दुई चारि मरै करि धंधा ॥
जो चाहा सो कीन्हेसि, करै जो चाहै कीन्ह ।
बरजनहार न कोई । सबै चाहि जिउ दीन्ह ॥

इस प्रकार ब्रह्म की स्वतन्त्र, सर्वव्यापक और सर्व सम्पन्न तथा सर्वशक्तिमान सत्ता का कवि वर्णन करता है । ब्रह्म की अखंड सत्ता के ही प्रथक-प्रथक प्रतिबिम्ब दिखलाई देते हैं ।

गागरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरै ॥
सूरुज दिपै अकास, मुहमद सब महँ देखिए ॥

जायसी ने माया को भी माना है । ब्रह्म अपनी माया का फैलाकर सृष्टि की रचना करता है और फिर उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखता है ।' ब्रह्म और जीव को लेकर ब्रह्मांड और पिंड के अन्दर भी उनकी कल्पना की गई है और पिंड के अन्दर अर्थात् हर जीव के अन्दर ब्रह्म की वही स्थिति मानी गई है जो उसकी ब्रह्मांड में है । इसी भावना को लेकर रहस्यवाद के मूल सिद्धान्तों का निर्माण हुआ है । इस साधन द्वारा आत्मा और परमात्मा की प्राप्ति के योग और भक्ति दो साधन बने हैं। बहुत-सी बातों में दोनों का भेद होने पर भी सभ्यता को नहीं भुलाया जा सकता । जायसी का जिस काल में प्रादुर्भाव हुआ, उस समय भारतीय वातावरण में योग तथा भक्ति दोनों की ही विचारधारा फैली हुई थी । जायसी पर दोनों का प्रभाव पड़ा । यह रहस्य की भावना जायसी के ग्रन्थों में भरी पड़ी है । आगे एक प्रथक अध्याय में हम जायसी के रहस्यवाद को ही लेकर विद्यार्थियोपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करेंगे :

सातों दीप नवौं खंड, आठौ दिसा जो आहि ॥
जो बरम्हंड सो पिंड है । हेरत अंत न जाहि ॥

पिंड का ब्रह्मांड के रूप में रूपक देखिए :

टा टुक झाँकहुँ सातौं खंडा । खंडै खंड लखहु बरम्हंडा ॥
पहिल खंड जो सनीचर नाऊँ । लखि न अंटकु पौरी महँ ठाँऊँ ॥
दूसर खंड बृहस्पति तहँवा । काम दुवार भोग-घर जहँवा ॥
तीसर खंड जो मंगल मानहु । नाभि कँवल महँ ओहि अस्थानहु ॥
चौथ खंड जो आदित अहिई । बांईं दिसी अस्तन महँ रहई ॥
पाँचवँ खँड सुक्र उपराहीं । कंठ माँह औ जीभ तराहीं ॥
छठएँ खंड बुद्धिकर बासा । दुई भौंहन्ह के बीच निवासा ॥

सातवँ सोमकपार मँह कहा जो दसवँ दुवार।
जो वह पँवरि उघारै सो बड़ सिद्ध अपार॥

इस प्रकार के वर्णन कबीर की कविता में न जाने कितने भरे पड़े हैं। यहाँ हमें जायसी पर योग-रूढ़ियों का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है।

इस वर्णन से ज्योतिष का भी ज्ञान झलकता है क्योंकि इसमें जो ग्रहों की स्थिति दी गई है वह सूर्य-सिद्धांत के ज्योतिष-ग्रन्थों के अनुकूल है। पिंड और ब्रह्मांड की एकता साधना के मार्ग में योग-शास्त्र का विषय बन जाती है। कवि सृष्टि के उत्पादन के विषय में और उससे पूर्व की स्थिति के विषय में लिखता है कि पहिले ब्रह्म में ही सब कुछ समाया हुआ था। फिर उसके अन्दर से दो पत्ते निकले चित्र तत्व और पार्थिव तत्व। फिर इन्हीं दो से चराचर सृष्टि बनी :

बजर-बीज बीरौ अस, ओहिन रंग न भेस।

× × ×

होतै बिरवा भए दुई पाता, पिता सरग औ धरती माता॥

× × ×

बिरिछ एक लागी दुई डारा। एकहिं ते नाना परकारा॥
मातु के रक्त पिता के बिन्दू। उपने दुवौ तुरुक औ हिन्दू॥
रक्त हुतें तन भए चौरंगा। बिदु हुतें जिउ पाँचौं संगा॥
जस ए चारिउ धरति बिलाहीं। तस वै पाँचहुँ सरगहिं जाँहीं॥

'जीवात्मा और देह ये एक ही वृक्ष की दो डालियाँ हैं, अर्थात् जड़ और चेतन। रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद की यहाँ स्पष्ट झलक मिलती है।' पद्मावत के शुरू में जो सृष्टि के उत्पादन का वर्णन है वह नैयायिकों, पौराणिकों इत्यादि के मतानुसार किया गया है। हिन्दू तथा मुसलमान, दोनों की मान्यताओं का सामंजस्य उसमें प्रस्तुत है। पौराणिकों के सप्तदीप नवखंड भी उसमें विद्यमान हैं और 'हिशद हजार आलम' भी। अखरावट में पद्मावत की-अपेक्षा सृष्टि के उत्पादन और जीवात्माओं के फल-भोग की गाथा काफी व्याख्या के साथ दी गई है। जायसी ने आदम, हौवा, नूर, मुहम्मद, मूसा इत्यादि सभी को मान्यता दी है और सृष्टि के आदि सृजन में उनका उल्लेख किया है। पद्मावत में सृष्टि-उत्पन्न करने का क्रम देखिए :

सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह, कीन्ह संसारू॥
कीन्हेंसि प्रथम जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू॥
कीन्हेसि अगिनि, पवन, जल, खेहा। कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा॥
कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू। कीन्हेसि बरन बरन अवतारू॥
कीन्हेसि दिन, दिनअर ससि राती। कीन्हेसि नखत, तराइन-पाँती॥

कीन्हेसि धूप, सीउ औ छाँहा। कीन्हेसि मेघ, बीजु तेहि माँहा ॥
कीन्हेसि सप्त मही बरम्हंडा। कीन्हेसि भुवन चौरहौं खंडा ॥

इसके पश्चात् कवि समुद्र, पर्वत, नदी, झरना, सीप, मोती, मगरमच्छ, वृक्ष, वन, पत्ती, पान, फूल, औषधि, अमृत, विष, मधु, भूत, परेत, देव और फिर मनुष्य का जन्म दिखलाता है। फिर अन्न की उत्पत्ति मानता है। फिर राजा भोज की उत्पत्ति कह कर हाथी, घोड़े इत्यादि का वर्णन करता है। इसी प्रकार संसार की अन्य वस्तुओं के नाम कवि गिनाता है और सृष्टि का वर्णन करता है।

सृष्टि का यह वर्णन इस्लामी तथा भारतीय दोनों की मान्यताओं से भरा पूरा है। सब चीजें जो दोनों को मान्य हैं कवि ने गिनाई हैं। कवि इस्लामी 'नूर' की ज्योति का भी वर्णन करता है :

कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू। कीन्हेसि तेहि पिरीति कविलासू ॥

—अखरावट

कविलास अर्थात् कैलाश पर्वत, परन्तु जायसी ने इसका प्रयोग स्वर्ग के लिए किया है। गेहूँ खाने के अपराध में आदम और हौवा को स्वर्ग से निकाले जाने का भी कवि ने चित्रण किया है :

खाएनि गेहूँ कुमति भुलाने। परे आइ जग महँ, पछिताने ॥

यहाँ हम यह स्पष्ट कर दें कि कवि की उक्त सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन किसी विशेष मान्यता की क्रमबद्धता को लेकर नहीं चलता। जो कवि के मन में आया है गिनाता चला गया है। बस प्रारम्भ में 'ज्योति' प्रकट करने के पश्चात् उसने संसार में मिलने वाली चीजों का सिलसिला बाँध दिया है।

जायसी का झुकाव अद्वैत भावना की ओर अवश्य रहा है। परन्तु उस में सूक्ष्म और स्थूल-विवेचन की आकांक्षा भी बराबर रही है और उसका विश्लेषण करने का प्रयास भी उसने निरन्तर किया है। उपनिषदों के विचार से कहीं-कहीं तो उसके कथन की मान्यता बिलकुल ऐसी प्रतीत होती है कि मानो कवि उनका ही अनुसरण कर रहा है परन्तु थोड़ी ही दूर पर चल कर वह फिर बहक जाता है और इधर-उधर के तत्वों का समावेश उसमें आजाता है। ईशोपनिषद के अनुसार कवि आत्मा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करता है :

पवन चाहि मन बहुत उतराइल। तेहितें परम आसु सुढि पाइल ॥
मन एक खंड न पहुँचै पावै। आसु भुवन चौदह फिरि आवै ॥

× × ×

पवनहि महँ जो आपु समाना। सब भा बरन जो आपु अमाना ॥
जेत डोलाए बे ना डोलै। पवन सबद होई किछुइ न बोलै ॥

यहाँ कवि ने आत्मा का वेग अचल मन से अति तीव्र बतलाया है। वह इन्द्रियों की गम्यता से परे है। वायु में वेग-शक्ति भी उसी की सत्ता से आती है और वह ठहरी हुई भी मन इत्यादि से बहुत आगे है।

सार-निरूपण

हमने इस अध्याय में जायसी द्वारा वर्णित ब्रह्म, सृष्टि-उत्पादन माया, इन्द्रियाँ, आत्मा, परब्रह्म इत्यादि के विषय में विचार किया। जायसी सूफी सिद्धांतों को मानने वाले प्रेमपरायण मुसलमान थे। उन्होंने उपासना के क्षेत्र में निराधार ब्रह्म को माना है। द्वैतवाद या मूर्ति-मठों में विश्वास न रहने पर भी, उसका खंडन उन्होंने नहीं किया। दर्शन उनका पूर्ण रूप से मुसलमानी ही है। सृष्टि की उत्पत्ति भी उसी प्रकार बतलाई है परन्तु कोई विशेष क्रम नहीं है उसका। उसके बीच-बीच में पौराणिक मान्यताएं भी आ जाती हैं।

सूफी लोगों ने मनुष्य को नफ्स, रूह, कलब और अक्ल चार भागों में बाँटा है। इन्हीं चारों की क्रमबद्ध सहायता से मनुष्य कलब के शीशे में परब्रह्म की झाँकी देख सकता है। सूफी दर्शन आलमे नासूत, आलमे मलकूत, आलमे जबरूत और आलमे लाहूत चार दुनियाँ मानते हैं। सृष्टि का यह विभाजन है जिसमें सभी चीजें आजाती है,—भौतिक जगत्, आत्म जगत, परब्रह्म मिलन और ब्रह्म, जहाँ सब एकीकार होजाता है।

ईश्वर-प्राप्ति के साधनों में जायसी ने शरीअत, तरीकत, हकीकत तथा मारफत, यानी कर्मकाण्ड, भजन, ज्ञान और अन्त में सिद्धावस्था को माना है। ये ही ईश्वर-प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं जिन पर चढ़ कर आदमी स्वर्ग की प्राप्ति कर सकता है।

सूफी सिद्धांतों में अद्वैत की मान्यता मिलती है। भक्ति और प्रेम सिद्धांतों के सूक्ष्म विश्लेषण करने पर दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता।

ब्रह्म और जगत् पर जायसी के विचार वेदांतियों से बहुत कुछ मेल खाते हैं। वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद का जायसी पर प्रभाव है। जायसी ने माया को भी माना है और उसका चित्रण भी किया है।

अध्याय ६

जायसी का रहस्यवाद

जायसी पैगम्बरी मत के प्रतिपादक थे, जिसके अन्दर ज्ञान-कांड का दखल नहीं के बराबर था। उनके लिए अद्वैत की कल्पना एक रहस्य था, क्योंकि उनके तत्व-चिंतकों ने कभी उसपर विचार नहीं किया था और जो कुछ भी प्रकाश उन्हें इस दिशा में मिला, वह भारतीय दर्शन की देन थी। मनुष्य की स्वाभाविक अक्ल अद्वैत-चिंतन जैसे गूढ़ विषय पर काम नहीं कर सकती थी। इसलिए सूफी प्रचारकों ने जब दार्शनिक तत्व के दर्शन अद्वैतवाद को अपने विचारों में व्यक्त करने का प्रयास किया तो उसका जो रूप बना उसमें एक रहस्यात्मकता आगयी, यह उनके लिए एक रहस्य था और उसे रहस्य मानकर ही उन लोगों ने प्रतिपादित भी किया। इसको रहस्य के रूप में अपनाने और मान्यता देने का दूसरा कारण यह भी था कि जिससे यह मुसलमानी धार्मिक विश्वासों और मान्यताओं के मार्ग में कोई प्रतिबन्ध न उपस्थित करें। परन्तु यह सब होने पर भी प्रतिबन्ध तो उपस्थित हुआ ही और इस विचारधारा को कुफ्र भी करार दिया गया, और मंसूर जैसे फकीरों को फांसी पर भी लटकना पड़ा।

सूफी मतावलम्बी प्रचारकों ने अपने धर्म का प्रचार मधुर्य-भावना को लेकर किया। रोमनकेथॉलिक पादरियों में भी यह माधुर्य-भावना मिलती थी। जब यह अद्वैत का विचार उनके मस्तिष्क से टकराया तो उन्हें यह एक रहस्य प्रतीत हुआ। सूफी लोगों ने ईश्वर की कल्पना स्त्री के रुप में की। अद्वैतवाद में आत्मा और परमात्मा को एक माना है, उसी प्रकार ब्रह्म और जगत् को एक कहा है। सूफी सैद्धान्तिक फकीरों और विचारकों तथा साधकों ने प्रकृति की विभिन्न वस्तुओं में ब्रह्म की ही झलक देखने का प्रयास किया है।

योरोप में रहस्यवादी कविता का पुनरुत्थान १६ वीं शताब्दी में हुआ। इसमें सर्व-आद की भावना मिलती थी जिसके आधार पर ईश्वर और प्राकृति सब एक थे, दोनों में कोई अंतर नहीं था। शैली और इट्स की कविताओं में इस स्वतंत्र विचारधारा की झांकी देखने को मिलती है। परन्तु ये कविताएँ कवि-कल्पना और लौकिक स्वातंत्र्य से ही सम्बन्ध रखती थीं। इनका सम्बन्ध दार्शनिक चिंतन से स्थापित करना भूल होगी।

अद्वैत एक दर्शन है, साधारण विचार नहीं। इसका सम्बन्ध ज्ञान के सूक्ष्म निवेदन से है। कबीर के चिंतन में जहाँ भावना और विचार का सामंजस्य हुआ है वहाँ भी रहस्य की भावना आई है और वह दर्शन का विषय रहा है। उस रहस्यवाद में शैली और ईट्स वाला रहस्यवाद नहीं है। वह विचार और ज्ञान के सूक्ष्मतम पहलुओं को छूता है। अद्वैतवाद मनुष्य के तत्त्व-चिंतन के फल स्वरुप प्राप्त एक ज्ञान है, दर्शन है। अद्वैत वाद के इसी ज्ञान-तत्व को लेकर जब भावना अपनी कल्पनाओं के साथ उड़ानें भरने लगती है तो वहीं पर रहस्य[illegible] की स्थापना होती है। कबीर में यहीं से रहस्यवाद का प्रारम्भ होता है और जायसी की भी स्थिति ठीक उसी प्रकार की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद को दो प्रकार का माना है :

१. भावनात्मक।

२. साधनात्मक।

दोनों को समझ लेना यहाँ स्पष्ट ही है कि जिस रहस्यवाद का आधार योग है वह साधनात्मक रहस्यवाद है और जिसका आधार भक्ति या सूफी प्रेम-सिद्धान्त है, वह भावनात्मक है। साधनात्मक रहस्यवाद के क्षेत्र में योग के जटिल आसन इत्यादि आते हैं, कर्म-कांड की विशेषता, तप और काया-कष्ट अधिक है, जबरदस्ती इंद्रियों का दमन किया जाता है और इस प्रकार साधक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करके भगवान् के निकट पहुँचने का प्रयास करता है। तंत्र और रसायन इत्यादि का भी आश्रय साधनात्मक रहस्यवाद में लेना होता है।

दूसरे प्रकार का रहस्यवाद भावनात्मक है। इसमें मधुर तथा सरल भाव से आत्म-समर्पण करके परमात्मा का सामीप्य प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। परमात्मा की अनुकम्पा प्राप्त करने की ओर साधक का लक्ष्य रहता है। इस भावना के अन्तर्गत अद्वैत ब्रह्म की ही कल्पना होती है। एक विश्वास रहता है साधक के मन में और उसी को आधार मानकर भक्त की भावना तथा कल्पना चलती है। कबीर के रहस्यवाद में हमें साधनात्मक तथा भावनात्मक दोनों स्वरूप मिलते हैं, परन्तु जायसी का रहस्यवाद कोरा भावनात्मक है, उसमें साधना की ओर कहीं-कहीं कवि ने संकेत भर भले ही कर दिया हो परन्तु वह वास्तव में न तो कवि की साधना का ही विषय है और न भावना का ही; केवल परम्परा और परिपाटी के नाते कुछ शब्दावली का प्रयोग मात्र ही है। अद्वैत की भावना का सर्वप्रथम स्पष्टीकरण या प्रतिपादन उपनिषदों में मिलता है। इस ज्ञान का प्रारम्भिक उदय बुद्धि द्वारा हुआ, इल्हाम या प्रेमोन्माद द्वारा नहीं। अद्वैतवाद वास्तव में रहस्यमयी भावना की वस्तु नहीं है, चिंतन की वस्तु है। ब्रह्म, प्रकृति, आत्मा के रहस्यों को समझने के पश्चात् प्रकट करने के जो साधन विद्वानों ने उपस्थित किये, उनमें भावना को स्थान मिला और शैलियाँ बनाई गईं। रहस्यवादी भी एक शैली बनी, जिसके द्वारा उन गूढ रहस्यों का प्रतिपादन हुआ। जब तक कोई विचार

मानसिक स्थल पर स्थित नहीं हो जाता तब तक उसका भाव-जगत में प्रविष्ट होना असम्भव है; ठीक उसी प्रकार अद्वैत की भावना का भी है। भावनात्मक शैली का आलम्बन इस प्रकार रहस्यवादी कविता का आदि स्वरूप और आदि विचार बना। फिर उसके स्पष्टीकरण में साहित्यिक उपकरणों का सहारा लेकर काव्य की रचना की गई और गम्भीर तथ्यों के विवेचन में कभी-कभी भावना-प्रधान विचारकों तथा भक्तों में भावोन्मेष भी हो जाता है।

ईश्वर-प्रेम की यही रहस्यवादी भावना कृष्ण-भक्ति में भी सामने आई। अधिक प्रचार तो इसका इसलिए न हो सका क्योंकि भारतीय-भक्ति का जो सामान्य स्वरूप है वह रहस्यात्मक नहीं है। उसमें भावना की अपेक्षा विचार का प्राधान्य है। फिर भी रहस्यात्मकता का लोप भी हम उसमें नहीं मान सकते। सूफी रहस्यात्मक प्रवृत्तियों और उनकी रूढ़ियों का प्रभाव इस समय के कृष्ण-भक्तों पर भी पड़ रहा था। माधुर्य-भाव की व्यंजना के साथ-साथ भक्त मंडलियों में इसका प्रत्यक्ष रूप भी देखने को मिल रहा था। देव दासियों की प्रथा इसी रहस्य को लेकर चलती थी। ये मंदिरों में रहकर कृष्ण की उपासना, नृत्य और कृष्ण की प्रणय-लीलाओं को निभाती थीं। इनकी प्रवृत्तियाँ सूफी रुढ़ियों से भी प्रभावित होती जा रही थीं। नृत्य करते-करते मूर्छना इत्यादि चीजें सूफी फकीरों की देन हैं। चैतन्य महाप्रभु की मंडली कहते हैं सूफियों की भाँति ही कीर्तन करते-करते मूर्छित हो जाती थी। मीरा के पदों में भी इसी प्रकार की रहस्यमयी-मधुर-भाव-प्रेरित विचारधारा पाई जाती है। मीरा तो अपना हर प्रकार का सम्बन्ध कृष्ण भगवान से ही जोड़ती थी।

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।

और अन्त में उसकी भावना यह हो जाती है कि ब्रह्मांड में जितनी भी आत्माएँ हैं उन सभी का पति कृष्ण है। स्त्री-पुरुष जो विश्व में दिखलाई देते हैं ये सब भौतिक भ्रम हैं। इस विषय में सूफी विचार-धारा भी भक्ति को इस भावना से मेल खाती है। यहाँ कल्पना में इतना अन्तर अवश्य है कि भारतीय विचार-धारा के अंतर्गत भगवान् की कल्पना पति-रूप में मिलती है और सूफी धर्म में यह स्त्री के रूप में पाई जाती है। वास्तव में यदि कल्पना की दृष्टि से देखा जाये और माधुर्य भावना को प्रधानता दी जाय तो भगवान् को स्त्री रूप में देखना ही अधिक मधुर, सरल और कोमल दिखलाई देता है। वैष्णव धर्म पर सूफी धर्म के इस प्रभाव के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, "सूफियों की देखा-देखी रहस्यवादी भाव की ओर कृष्ण भक्ति-शाखा के भक्त प्रवृत्त हुए। इनमें मुख्य मीराबाई हैं।

......सूफियों का असर कुछ और कृष्ण-भक्तों पर भी पूरा-पूरा पाया जाता है। चैतन्य महाप्रभु में सूफियों की प्रवृत्तियाँ झलकती हैं। जैसे सूफी कव्वाल गाते-गाते हाल की दशा में हो जाते हैं वैसे ही महाप्रभु जी की मंडली भी नाचते-नाचते मूर्छित हो

हो जाती थी। यह मूर्छना रहस्यवादी सूफियों की रुचि है। इसी प्रकार मद, प्याला, उन्माद तथा प्रियतम ईश्वर के विरह की पूरी रूढ़ व्यंजना भी सूफियों की बँधी हुई परम्परा है। इस परम्परा का अनुसरण भी कुछ पिछले कृष्ण-भक्तों ने किया। नागरीदास जी इश्क का प्याला पीकर बराबर झूमा करते थे। कृष्ण की मधुर मूर्ति ने कुछ आजाद सूफी फकीरों को भी आकर्षित किया। नजीर अकबराबादी ने खड़ी बोली के बहुत से अपने पद्यों में श्री कृष्ण का स्मरण प्रेमालम्बन के रूप में किया है।

निर्गुण शाखा के कबीर, दादू आदि संतों की परम्परा में ज्ञान का जो थोड़ा बहुत अवयव है वह भारतीय वेदान्त का है। पर प्रेम-तत्व बिलकुल सूफियों का है। इनमें से दादू, दरियासाहब आदि तो खालिस सूफी ही जान पड़ते हैं। कबीर में भी "माधुर्य-भाव बहुत से स्थानों पर पाया जाता है।" जब-जब वह अपने को राम की बहुरिया कहते हैं तो उनका भावना-जगत् माधुर्य से भर उठता है।

इस प्रकार भावनात्मक रहस्यवाद का प्रभाव कबीर-परम्परा के संत कवियों पर, कृष्ण-भक्ति-धारा के भक्तिमार्गी वैष्णव कवियों पर था। इनके साथ-ही-साथ मुसलमानों की सूफीधारा भी देश में प्रवाहित हो रही थी, जिनकी विचार-धाराओं में कुछ मतभेदों के साथ मूल तत्वों में सामान्य भाव ही चलता है।

साधनात्मक रहस्यवाद का सम्बन्ध ज्ञान मिश्रित हठयोगी भावना और ब्रह्म की कल्पना से है। हठयोग, तंत्र, रसायन इत्यादि की बातें भी साधारण मस्तिष्क के लिए रहस्य की बातें हैं। साधक अपनी साधना के चमत्कार से कुछ विशेष बातें प्रदर्शित करता है, तो वह जनता के लिए रहस्य का विषय है। इन सब का वर्णन और फिर कल्पनात्मक वर्णन, बस यही साधनात्मक रहस्यवाद का विषय है। कबीर ने भारतीय ज्ञान-विचारावलि अर्थात् वेदांत और सूफी प्रेम का सम्मिश्रण करके जिस रहस्यवाद की सृष्टि की उसे हम अधिक बल के साथ साधनात्मक रहस्यवाद ही कहेंगे। इंगला, पिंगला, सुषमना नाड़ी और शरीर के भीतरी चक्रों की चर्चा इस रहस्यवादी धारा में मिलती है। इस विचार-धारा में ईश्वर को केवल मन के अन्दर खोजने की भावना रहती है।

भारतीय भक्त इस काल में ईश्वर की खोज अपने मन में नहीं करता था। भारत में अवतारवाद का प्रचार था और भक्त अपने उपास्य को दिल के एकान्त कोने में प्रतिष्ठित न करके उसे बहिर लोक में प्रतिष्ठित करता था। इसी में भगवान् का लोकरंजक स्वरूप निहित था। फारस में भावात्मक रहस्यवाद तेजी से फैल रहा था। इसमें अद्वैत की झलक थी। वहाँ शायरी का तो प्रथम विषय ही यह बन गया। खलीफाओं की कड़ी धार्मिक शासन प्रणाली की कड़ियाँ सूफी फकीरों की मधुर वाणी ने छिन्न-भिन्न कर डालीं। जनता सूफियों के प्रेममय संगीत में बह निकली और प्राचीन रूढ़ियाँ आप-से-आप टूटकर गिर पड़ीं।

जब सूफी मुसलमान भारत में आये तो उन्होंने भारत के वेदांती लोगों से भेंट की।

भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू । और राते सब पंखि पखेरु ।

राती राती अगिनि सब काया । गगन मेघ राते तेहि छाया ।

जायसी का रहस्यवाद ऊँचे दर्जे का भावनात्मक रहस्यवाद है, जिसमें अद्वैती ब्रह्म की प्रेममयी अनुभूति का सुन्दरतम रूप दिखलाई देता है ।

सारनिरुपण

रहस्यवाद की कल्पना वेदांती अद्वैतवाद और सूफी-प्रेम-भावना के सम्मिश्रण से पैदा हुई है। इसके दो स्वरूप भारत में पनपे, एक साधनात्मक रहस्यवाद और दूसरा भावनात्मक रहस्यवाद । महाकवि कबीर को साधनात्मक रहस्यवाद का प्रवर्तक मानना चाहिए । महाकवि जायसी को हम भावनात्मक रहस्यवाद का प्रवर्तक तो इसलिए नहीं मान सकते क्यों कि पद्मावत से पूर्व भी भावनात्मक रहस्यवाद के ग्रन्थ लिख जा चुके थे, परन्तु यह तो मानना ही होगा कि इस विचारधारा का सब से प्रबल समर्थन करने वाला और इस भावना का सबसे सफल चितेरा कवि जायसी ही था। जायसी के इस रहस्यवाद में पद्मावती ब्रह्म का साकार रूप है और उसी को प्राप्त करने के लिए रत्नसेन आत्मा के रूप में जीवन की विविध परिस्थितियों से होकर जाता है। कवि ने इस सबकी बहुत ही मधुर कल्पना की है और फिर उसका चित्रण तो और भी हृदय-ग्राही तथा सरल हुआ है। भावुक पाठकों के लिए यह भावनात्मक रहस्यवाद कल्पना और भावना का सुन्दरतम स्वरूप है ।

संक्षिप्त

१. रहस्यवादी भावना में वेदान्ती अद्वैतवाद और सूफ़ी प्रेम का सामंजस्य है ।
२. भारत में यह रहस्यवादी भावना अपने साधनात्मक तथा भावनात्मक दोनों रूपों में प्रस्फुटित हुई है ।
३. कबीर साधनात्मक रहस्यवाद के प्रवर्तक हैं ।
४. जायसी भावनात्मक रहस्यवाद की भावना को लेकर रचना करने वाले हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं ।

अध्याय ७

जायसी की धार्मिक और सामाजिक विचारधारा

मनु और कणादि इत्यादि स्मृतिकार, "कुछ विशेष प्रकार के नैतिक नियमों के पालन तथा कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुसरण" को धर्म मानते हैं।

मीमांसक धर्म की परिभाषा देते समय कहते हैं कि धर्म प्रेरणा-प्रधान है। वे धर्म को, "विविध प्रवृत्तियों पर उचित अर्गला देने वाला तत्व" मानते हैं।

वेदव्यास महाभारत के समय में लिखते हैं, "समाज की व्यवस्था करने वाले समस्त तत्वों को धर्म कहा जाता है।"

कणाद धर्म की इस प्रकार परिभाषा देते हैं, "धर्म लौकिक एवं पारलौकिक समृद्धि एवं शांति का विधान करने वाला है।"

इस प्रकार धर्म की व्याख्या करने वाली चार विचारधाराएँ या प्रणालियाँ सामने आईं। वास्तव में यदि देखा जाय तो ये सभी अपने में पूर्ण हैं और सभी अपूर्ण भी हैं। धर्म नाम बंदिश का है, यह साधारण अर्थ में समझना चाहिए और ये बंदिशें ही हैं जिन्हें विद्वान् लोग समाज की उच्छृंखल प्रवृत्तियों पर लगा-लगा कर बराबर उन्हें नियंत्रित करते रहे, सामाजिक अहित की ओर से रोकते रहे और मानव-सभ्यता के विकसित होने में सहयोग देते रहे। ये बंदिशें जब बनाई या बांधी गईं तब अपने-अपने युग के काफ़ी क्रांतिकारी लोगों द्वारा बाँधी गई, परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीता त्यों-त्यों उनकी सच्चाई में कमजोरी आई, दिखावा आगे बढ़ा, रूढ़ियों का बोलबाला हुआ, तभी फिर नई क्रांति की आवश्यकता हुई, मनुष्य इस प्रकार अपने आदिकाल से नियमों में बँधता और समाज के ढाँचे को आगे घसीटता तथा उसमें अपने जीवन का योग देता चला आरहा है। सृष्टि के आदि काल से ज्यों-ज्यों मानव-सभ्यता आगे चली है त्यों-त्यों उसकी समस्याएँ भी बढ़ी हैं और उन्हीं के आधार पर धर्म अर्थात् मान्यताएँ यानी पाबन्दियाँ भी सामने आई हैं। स्वतंत्र समाज के प्रारम्भिक युगों में राज्य-सत्ता की अपेक्षा धर्म-सत्ताओं का अधिक बल रहा है। फ़ौज और दल-बल राजाओं के ही पास होता था, परन्तु जनता धर्म के साथ चलती थी। और यह धर्म निस्वार्थ धर्माचार्यों के हाथों में होता था, अर्थात् वही सबसे बड़ा धर्म का ठेकेदार समझा जाता था। धर्म की यह ठेकेदारी अच्छे हाथों

में आकर जनता का हित, और गलत हाथों में पड़कर उसका अहित करती रही। जब-जब अहित हुआ तो जनता का उनमें से विश्वास उठा और नये विद्वान को देश ने अपनाया और उसने धर्म के नियमों में क्रांति की। इस प्रकार धर्म के नियमों का क्रम बराबर आगे बढ़ता जा रहा है।

धर्म की ये मान्यताएँ या नियम समय-समय पर बदले और उनकी नई-नई परिभाषाएँ गढ़ी गईं; परन्तु सच यह है कि ये सब परिभाषाएँ अपने पूर्ण रूप को इस परिवर्तनशील विश्व में नहीं पहुँच सकतीं।

हर युग की अपनी-अपनी समस्याएँ रही हैं। अनार्य लोगों के बीच आर्य आये तो नई समस्याएँ सामने आईं और धर्म के नियमों का रूप बदला। ठीक उसी प्रकार जब अन्य जातियों के आक्रमण हुए और उन जातियोंके लोग भारतमें आकर बसे तो उनके पारस्परिक रहन-सहन से नई समस्याओं ने जन्म लिया और उसका प्रभाव धर्म की मान्यताओं पर भी पड़ा।

मुसलमान-युग में मुसलमानों की सभ्यता का असर भारत में आया और उसने यहाँ की धार्मिक मान्यताओं को भी छुआ। जिस समय तक मुसलमान हमलावर कौम के रूप में रहे, उनका भारतीय जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु किसी भी जाति का यह रूप बना नहीं रह सकता यदि वह स्थायी रूप से कहीं बसना चाहती है। मुसलमान भारत में बसे, तो उन्हें यहाँ के रहने वालों में रब्त-जब्त बनाना पड़ा, क्योंकि उसके बिना सामाजिक जीवन चल ही नहीं सकता था। घर के चौके में आदमी, हो सकता है किसी को न घुसने दे, परन्तु सड़क पर चलने से कोई नहीं रोक सकता। समाज के और व्यवहारों में भी पारस्परिक सम्पर्क रखना ही पड़ा। दो जातियों के जीवन में कुछ साम्यता की चीजें थीं और कुछ विभिन्नताएँ। साम्यताओं में सम्बन्ध स्थापित हुआ और विभिन्नताएँ विभिन्नताएँ ही रहीं। इन विभिन्नताओं के फल स्वरूप और अपने को एक ओर अधिक सुसंस्कृत तथा दूसरी ओर हकूमत करने वाली कौम में से समझ कर जो विषमताएँ पैदा होती थीं उनका निवारण करने का प्रयत्न इस काल के कुछ विचारकों, संतों और भक्तों ने किया है।

महाकवि कबीर की विचारधारा इस दिशा में उल्लेखनीय है, जिसने दोनों जातियों की धार्मिक विषमताओं को सामने रखकर एक सामान्य मार्ग स्थापित किया था। यह सामान्य मार्ग सामान्य जनता के लिए था। तत्वद्रष्टा विद्वानों और ऊंची जाति के लोगों में इसके प्रति रुचि नहीं हो सकती थी। कबीर ने दोनों धर्मों की अच्छी तथा आसानी से समझ में आने वाली बातों को ही अपनाया।

मलिक मुहम्मद जायसी का नाम इसी युग के उन भावनात्मक धर्मनिष्ठ प्रेमियों में है जिनके मन और विचारों में सहिष्णुता थी और जो मानव को धार्मिक रूढ़ियों की अपेक्षा अधिक निकट से देखना चाहते थे।

जहाँ तक धर्म की रूढ़ियों का सम्बन्ध था ये पूरे मुसलमान थे। मुसलमानी दर्शन ही इन्हें मान्य था और उसी में अद्वैत की कल्पना करके भारतीय भक्ति का अपने ढंग का प्रेम स्वरूप खड़ा करके मानव के और निकट आना चाहते थे। इनके मत-प्रचार का साधन शक्ति-बल न होकर प्रेम-बल था, जोर जबरदस्ती का सौदा नहीं था।

महाकवि जायसी का सम्पर्क हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही विद्वानों से हुआ और सभी का सत्संग भी उन्होंने किया। जहाँ तक मानव-जीवन से सम्बन्ध रखने वाले धर्म की मान्यताएँ थीं उन्हें जायसी ने सामान्य-सत्य पर ही तौलने का प्रयास किया परन्तु जहाँ धर्म की रूढ़िवादी स्थूल मान्यताओं का सम्बन्ध था वहाँ जायसी अपने को समाज के दायिरे से ऊपर उठाकर नहीं ले जा सके। कबीर का विचार इससे बहुत ऊपर था और उनकी भावनाओं तथा विचारों में कोई भी ऐसा धर्म नहीं आ सकता था जो समय, स्थान और पुरानी मान्यताओं की रूढ़ियों की पाबन्दी करे। जायसी इस माने में कबीर के स्थान तक नहीं पहुँचाये जा सकते।

महाकवि जायसी एक प्रेमी भगवान्-भक्त के नाते इस संसार-वाटिका में भ्रमण कर रहे हैं। इसके फूलों और कांटों में उन्हें अपने प्रियतम की ही मधुर मूर्ति दिखलाई देती है। वह उसमें लिप्त नहीं हैं। न तो उस बाटिका का कंटक ही उनका शरीर छेद सकता है और न उसका कोई पुष्प ही उन्हें मोहित कर सकता है। वह एक ही ब्रह्म की प्राप्ति को अपना लक्ष्य समझकर चलते हैं। नागमती रत्नसेन की स्त्री है परन्तु पद्मावती अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति की लगन के सामने लौकिक व्यवहार सब समाप्त हो जाते हैं। सूर ने जहाँ गोपियों को मुरली की तान सुनकर अपने बच्चों और पतियों को खाना परोसते छोड़कर भाग लेने की बात कही है वहाँ भी यही भावना है। चीरहरण इत्यादि की लीलाएँ भी भौतिक आवरण को चीर कर ब्रह्म की ओर लौ लगाने की ही बातें हैं। मीरा का परिवार को त्याग कर कृष्ण की भक्ति में दीवानी हो जाना भी यही विचारधारा है। अंतर बहुत झीना है और वह ऊपरी भी है। तथ्य की वास्तविक मान्यता में कहीं कोई अन्तर दिखलाई नहीं देता।

जायसी ने इस प्रकार धार्मिक मान्यता के नाते चाहे यों कहें कि सूफी विचार-धारा का प्रचार किया, परन्तु सच यही है कि भारतीय जनता में फैली उस विचारधारा को ही लेकर यह आगे बढ़े हैं जिसे सूर और मीरा ने भी अपनाया। धर्म के इस स्वरूप में महाकवि तुलसीदास का लोक मर्यादावादी स्वरूप नहीं था। इसी लिए व्यवस्था के नाते, बंदिशें कम होने से, यह समाज के बाहरी रूप पर उस तरह नहीं छा सका जिस प्रकार 'तुलसीकृत' रामायण का स्वरूप छा गया। जहाँ एक ओर साहित्य के क्षेत्र में रामायण अपना स्थान रखती है वहाँ दूसरी ओर धर्म के क्षेत्र में उसे और भी अधिक अपनाया गया है।

जायसी की धर्म-प्रणाली भारतीय समाज में, यह सच है कि सूफ़ी विचारधारा

होने के नाते प्रेम द्वारा ही जनता में पैठी, परन्तु उसका अधिक प्रसार न हो सका। इसका प्रभाव हिन्दू-जनता तक बहुत कम हुआ। यह विचारधारा कबीर की विचारधारा से बहुत पीछे रह गई।

जायसी ऊंच-नीच की भावना से परे थे। वह मानव मात्र को एक स्तर पर रखकर देखते थे। मुसलमान होने के नाते उनके सामने कोई बड़ा या सम्मानित व्यक्ति नहीं बन सकता था। नेक काम करने वाला, दयावान, प्रेमी, सरल प्रकृति का मनुष्य ही उनकी श्रद्धा का पात्र बन सकता था। बस यही उनके धर्म के साधारण सामाजिक नियम भी थे। इन्हीं के आधार पर उनकी धार्मिक मान्यताओं का जनता पर प्रभाव भी पड़ता था। इनका अपना जीवन इनके धर्म और इनकी मान्यताओं का प्रतीक था जो यह कहते थे, वह करते भी थे और वैसा ही इनका जीवन भी बनता गया। उसमें न कहीं पर राजनीति थी, न छल छिद्र था, न दुराव था, न बहकाव था, जो था वह सरल, स्पष्ट, सीधा और मधुर था। किसी के दिल को ठेस लगाने वाला तो उसमें कुछ था ही नहीं। सब व्यक्तिगत था। उसके अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाला था। उनके अपने जीवन को प्रेममय बनाने का साधन था, मार्ग था, सीख थी। आत्मा की स्वच्छता और परमानन्द की ओर प्रगति का सरल, सीधा और प्रेममय मार्ग था।

जायसी एक प्रेमी जीव था, जिसके जीवन में भौतिक सुख की झलक दिखलाई ही नहीं देती और उसकी तरफ उसने कभी प्रयास भी किया हो, ऐसा भी नहीं लगता। वह अपने जीवन से संतुष्ट था। उसे किसी राजसी आश्रय की आवश्यकता नहीं थी।

यही था जायसी का धर्म और उसकी मान्यताएँ, जिनके निकट हर इन्सान खड़ा होकर देख सकता था, उसकी अच्छाइयों को ग्रहण कर सकता था, अपने जीवन में उसे घटा सकता था और उस सुख शांति की प्राप्ति कर सकता था, जिस संदेश को लेकर कवि चल रहा था।

जायसी वास्तव में एक सहृदय कवि था और उसकी धार्मिक प्रवृत्तियों की झलक उसकी कृतियों में प्रयास स्वरूप नहीं आई। किसी विशेष धर्म का प्रचार करना भी कभी सम्भवतः उसका लक्ष्य नहीं था। धर्म का जहाँ तक सम्बन्ध था, वह उसकी आत्मा तक ही सीमित था। कोई मुसलमान रहे या हिन्दू, इस दिशा में भी कवि अधिक प्रयत्नशील नहीं था और न ही उसे इसकी चिंता थी। वह अपने मन से इस्लाम धर्म को अच्छा समझता था और अपने को उसी संस्कृति का एक अंश मानता था। और समझना भी चाहिये कि बहुत कुछ अंशों में कबीर जैसी विश्वव्यापी भावना का हर कवि में होना आवश्यक भी नहीं है।

जायसी हिन्दू और मुसलमान दोनों समाजों को प्रथक-प्रथक मानते थे और दोनों की धार्मिक पाबंदियों को भी अलग-अलग ग्रहण करते थे। जहाँ तक उनके रीति रस्म

और रिवाजों, त्योहारों को मानने की बात थी वह पूरे मुसलमान थे, परन्तु उनकी यह मुसलमानियत इंसानियत के रास्ते में रोड़ा बनकर आने वाली नहीं थी। धर्म का स्थान व्यक्तिगत जीवन के अन्दर ही बंद मानते थे और आत्मा की शुद्धि तक ही वह सीमित था। दैनिक व्यवहारों में धर्म को बीच में लाकर बवंडर पैदा करने वाली बातें उनके प्रेम सिद्धांत के आगे आकर आप-से-आप चकनाचूर हो जाती थीं।

यही कारण था कि अमेंठी के हिन्दू राजा इनके इतने भक्त हो गये। यदि इनके जीवन में धार्मिक सहिष्णुता और सरल स्वच्छता न होती तो कभी भी हिन्दू राजा का झुकाव इनकी तरफ नहीं हो सकता था। जायसी किसी की भावना को ठेस पहुँचाना पाप समझते थे।

सारनिरूपण

महाकवि जायसी धर्म के क्षेत्र में प्राचीन रूढ़ियों के अनुसार हर प्रकार से मुसलमान थे। मुसलमानी सभ्यता का उन पर असर था और उसी की संतान वह अपने को समझते थे। उस दायिरे से बाहर निकलना उनके लिए कठिन था। उनका रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल, पहिनावा, रिवाज, नैतिक-कर्म और दैनिक कर्मकांड सब मुसलमानों जैसा ही था। उसमें कहीं पर भी हिन्दुत्व की छाप नहीं दिखलाई देती।

परन्तु जहाँ मानवता की बात आती है तो उनका प्रेम-सिद्धांत हिन्दू और मुसलमान पर एकसा ही लागू होता है। यहाँ आकर कोई जाति या कर्म-व्यवस्था उनके सम-विचार में बाधा उपस्थित नहीं कर सकती।

जायसी का धर्म उनका अपना जीवन था, जिसमें सरलता, भावुकता तथा प्रेम के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। वह मानव मात्र का हितैषी था और उसकी प्रेम-धारा में प्रवाहित होने का हर इंसान चाहे वह किसी भी धर्म का क्यों न हो, पूरी तरह से अधिकारी था। उसने जिस साहित्य की रचना की, उसमें धार्मिक सामंजस्य स्थापित करके भावना को विश्वव्यापी बनाने का सफल प्रयास किया है।

जहाँ तक समाज का सम्बन्ध है, जायसी ने हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समाजों की प्रथक-प्रथक मान्यता स्थापित की है।

संक्षिप्त

१. जायसी मुसलमान धर्मावलम्बी थे।
२. इस्लाम-धर्म की सूफी विचारधारा की एक शाखा की मान्यताओं को मानते हुए आपने प्रेम-काव्य की रचना की है।
३. हिंदू और मुसलमान समाज, दोनों को यह प्रथक-प्रथक मानते थे, परन्तु इनके प्रेम मार्ग में धार्मिक प्रतिबन्ध नहीं था।
४. यह मानव के पुजारी थे। हर इंसान से बिना मजहब की पाबन्दियों के प्रेम करते थे।

अध्याय ८

जायसी की जानकारी

साहित्यक जानकारी : महाकवि जायसी के जीवन, आध्यात्मिक दृष्टिकोण, साहित्यक प्रवृत्तियों इत्यादि के विषय में हम पीछे संक्षेप में प्रकाश डाल चुके हैं। यहाँ हम 'जायसी की जानकारी' शीर्षक के अंतर्गत उनके शास्त्र-ज्ञान के सम्बन्ध में साधारण चर्चा करेंगे। जायसी, जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं, निरभिमान व्यक्ति थे और अपने को पण्डितों का पिछलगा मानते थे। उन्हें विद्वान् होने का अभिमान नहीं था और न ही इस बात का गर्व था कि वह इतने महान् कलाकार और सिद्ध फकीर हैं कि जिनकी साधना के आगे बड़े-बड़े आदमी झुक जाते हैं।

जायसी ने अपने काव्य में सुन्दर अलकारों की योजना की है, काव्य-प्रसिद्ध उक्तियाँ भी उनके काव्य में उपलब्ध हैं, जैसे नख-शिख वर्णन, इत्यादि प्रबन्ध काव्य की रूढ़िवादी मान्यताएँ भी हैं जैसे समुद्र-वर्णन, वन-वर्णन, जल-क्रीड़ा इत्यादि, जायसी ने यह ज्ञान बहुत से विद्वानों के सम्पर्क में आकर प्राप्त किया था। जायसी ने ये चीजें काव्य और रीति-ग्रंथों का अध्ययन करके प्राप्त की थीं, यह मानना संदिग्ध है। डा० ग्रियर्सन लिखते हैं कि जायसी ने जायस में रीति-ग्रन्थों का अध्ययन संस्कृत-आचार्यों से किया था; परन्तु इसका उन्होंने कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। जायसी की भाषा, छंद-प्रयोग तथा अन्य काव्य-सम्बन्धी योजनाओं के आधार पर भी यह मानना कि उन्होंने रीति-ग्रन्थों का संस्कृत-आचार्यों से अध्ययन किया होगा, समझ में नहीं आता। जायसी ने यदि संस्कृत रीति-ग्रन्थों का अध्ययन किया होता तो कोई कारण न था कि उसका प्रभाव उनकी भाषा और उनके अंदर की शब्द-योजना पर न पड़ा होता। जहाँ तक पर्यायवाची शब्दों के प्रयोगों का संबन्ध है जायसी ने बहुत ही संक्षेप में रहकर शब्द-चयन किया है। यह जायसी को जानकारी की कमी का ही द्योतक है। कोई भी विद्वान् सुन्दर शब्द-योजना पर अधिकार रखने के बावजूद उसका प्रयोग न करे, यह कभी सम्भव ही नहीं हो सकता।

सर्व प्रथम हम पद्मावत की कथा को ही लेते हैं। जिस प्रकार की कथा पद्मावत की है वैसी कथाओं का प्रयोग संस्कृत-काव्य में न मिलकर जायसी के पहिले प्रेम-काव्यों

के ही लेखकों की रचनाओं में मिलता है। अपभ्रंश काव्य में भी हमें इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। जायसी पर हमें इन्हीं काव्यों का प्रभाव दिखलाई देता है।

जहाँ तक काव्य में प्रयुक्त छंदों का सम्बन्ध है वहाँ तक भी हमें जायसी के काव्य पर प्राकृत-ग्रन्थों का ही प्रभाव दिखलाई देता है। जायसी ने अपने काव्य में जिन संस्कृत-शब्दों का प्रयोग किया है वह सीधा प्रयोग न मिलकर अपभ्रंश द्वारा आया हुआ ही प्रतीत होता है। जैसे 'ससहर', 'दिनिअर','अछुट','बिसहर', 'भुआल इत्यादि शब्द इसी प्रकार के हैं। जायसी की कविता में कहीं-कहीं संस्कृत-काव्यों के कुछ पद्यांशों के भाव भी मिलते हैं, परन्तु वे भी सीधे संस्कृत से न लिये जाकर अपभ्रंश से ही लिये गये हैं। जायसी ने अपने काव्य में जिन छन्दों का प्रयोग किया है उनसे यह पता नहीं चलता कि उन्हें छन्द-शास्त्र का ज्ञान था। चौपाई जैसे सरल छंद के प्रयोग में भी मात्राओं की कवि ने गलतियाँ की हैं। दोहे के चरणों में तो आम तौर पर कवि ने गलती की है।

जहाँ तक अलंकारों में उपमानों का प्रयोग कवि ने किया हैं वह सभी काव्य-प्रसिद्ध हैं, उसमें किसी प्रकार की नवीनता का समावेश नहीं मिलता है। प्राचीन उपमाओं और उक्तियों का प्रयोग कवि ने कलात्मक किया है, इसमें कोई संदेह नहीं। उपमाओं का यह प्रयोग और उक्तियों का यह चुनाव कवि ने संस्कृत-काव्यों से न करके भाषा-काव्यों से ही किया है।

इस प्रकार जायसी का काव्य-शैली, भाषा, वर्णन, अलंकार, छंद इत्यादि का ज्ञान संस्कृत से न लिया जाकर देशज तथा प्राकृत भाषा की ही रचनाओं से पढ़कर नहीं सुनकर लिया गया है और यही कारण है कि उनमें वह पूर्णता नहीं आ पाई जो एक पंडित की काव्य रचना में आनी चाहिए थी।

स्थान विषयक जानकारी : अब हम जायसी की अन्य जानकारियों के विषय में भी थोड़ा विचार करलें। कवि की पद्मावत की कथा चित्तौड़ से प्रारम्भ होती है। चित्तौड़ का वर्णन कवि ने कहीं पर भी विस्तार के साथ नहीं किया और न ही यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य की ओर ही उसकी दृष्टि गई है। वहाँ के प्राचीन इतिहास पर भी कवि ने प्रकाश नहीं डाला। इसके पश्चात् सिंघल द्वीप से ब्राह्मण के हीरामन तोता लाने की बात काल्पनिक ही है। परन्तु फिर रत्नसेन की यात्रा के समय कवि ने मार्ग और समुद्र-तट का वर्णन किया है। यह वर्णन संक्षिप्त होने पर भी कवि की जानकारी का द्योतक अवश्य है। वर्तमान मध्य प्रदेश की इससे जनकारी मिलती है। कवि लिखता है:

दहिने बिदर, चँदेरी बाँए ॥

पदमावत—पृष्ठ १७६ (भूमिका भाग)

यहाँ कवि यात्रा की चाल पर प्रकाश डालता है। समुद्र-तट के विषय में लिखता है :

आगे पाव उड़ैसा, बाँए दिये सो बाट। दहिनावरत देइकै, उतरू समुद्र के घाट ॥

कवि का यह चित्रण भारतीय प्राचीन यात्राओं में वर्णित कलिंग-घाट की स्मृति को जागृत करता है। यह जानकारी कवि को किंवदंतियों से प्राप्त मालूम देती है।

दक्षिण में बीजानगर और विजयगढ़ राज्य का भी कवि-वर्णन के अंतर्गत जिक्र करते हैं :

सुन मत, काज चहसि जो साजा। बीजानगर, विजयगढ़ राजा ॥

सात समुद्रों की बात बहुत प्राचीन है, परन्तु उनके नाम कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर गढ लिये हैं। उनसे प्रेम-योगी के मार्ग में आनेवाली दिक्कतों का आभास मिलता है, जिसका प्रदर्शित करना कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है।

पहुँचहुँ जहाँ गोड़ औ कोला। तजि बाएँ अंधियार खहोला॥

जहाँ तक नामों का सम्बन्ध है जायसी की जानकारी काफी विस्तृत थी। बहुत से तीर्थों के नाम उन्हे याद थे और उनके नाम कवि ने गिनाये भी हैं।

ऐतिहासिक जानकारी : व्यवस्थित रूप से जायसी ने चाहे इतिहास का अध्ययन न किया हो परन्तु ऐतिहासिक जानकारी उन्हें कम नहीं थी। पद्मावत की कथा के विषय में हम पीछे कह आये हैं कि इसका पूर्वार्ध काल्पनिक और उत्तरार्ध ऐतिहासिक है। कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों को काल्पनिक तथ्यों के साथ गूंथकर ही यह साहित्य की माला तय्यार की है। पद्मावती और अलाउद्दीन की कथा लोक-प्रसिद्ध है। अलाउद्दीन, पद्मावती, गोरा-बादल इत्यादि नाम इतिहास में भी आते हैं। ये केवल कवि-कल्पना से पद्मावत में नहीं आये। अलाउद्दीन की चढ़ाई, देवगिरि और रणथम्भौर की चढ़ाई इत्यादि से जायसी अपरिचित नहीं थे।

जिस समय की यह कथा है उस समय की घटनाओं तथा परिस्थितियों का भी उन्हें ज्ञान था। मंगोलों की चढ़ाई का भी जायसी ने वर्णन किया है। जब अलाउद्दीन चित्तौड़गढ़ का घेरा डाले होता है तभी उसके पास पत्र आता है कि मंगोलों ने आक्रमण कर दिया :

एहि विधि ढील दीन्ह तब ताईं। दिल्ली से अरदासैं आईं॥
पछिउँ हरेव दीन्ह जो पीठी। सो अब चाढ़ा सौंह कै दीठी॥
जिन्ह भुइँ माथ गगन तेहि लागा। थानें उठे आव सब भागा॥
उहां साह चिउर गढ़ छावा। इहां देश अब होई परावा॥

गोरा बादल की कथा ऐतिहासिक है। किस प्रकार वे रत्नसेन को दिल्ली से छुड़ाकर ले गये यह ऐतिहासिक तथ्य है और बहुत से इतिहासकारों ने इसे मान्यता दी है।

ज्योतिष-ज्ञान : जायसी के काव्य में ज्योतिष की भी झलक मिलती है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इनका ज्योतिष पर अधिकार था या इन्होंने व्यवस्थित रूप से ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन किया था। विद्वान् लोगों को उनके विषय के अतिरिक्त भी कुछ-न-कुछ जानकारी रहती ही है। उसका सही प्रयोग भी वे उपमा उत्प्रेक्षाओं के रूप में

कर ही सकते हैं परन्तु इसका अर्थ ज्योतिष का पांडित्य लगा लेना नादानी है। इसी प्रकार का प्रयोग हमें जायसी के काव्य में ज्योतिष का भी मिलता है। पंडित पद्मसिंह जी ने इसी प्रकार के आधारों पर कवि बिहारी को सर्वगुण सम्पन्न और सर्वकला तथा विद्याविद साबित करने का प्रयत्न किया है। हम ऐसा नहीं मानते। जायसी एक व्यवहारकुशल विद्वानों की मंडलियों में बैठकर सत्संग करने वाले व्यक्ति थे। वहीं से उन्हें अनेकों प्रकार की साधारण जानकारी प्राप्त हुई, जिसका प्रयोग कि उन्होंने अपने काव्य में किया। इसके फल स्वरुप काव्य में चमत्कार उत्पन्न हुआ, इसमें कोई संदेह नहीं। जायसी के काव्य में यत्र-तत्र ज्योतिष की जानकारीके सूत्र बिखरे पड़े हैं। रत्नसेन की सिंघल द्वीप से यात्रा का चित्रण करते समय आपकी विशेष जानकारी का परिचय मिलता है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल 'आपको ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था', ऐसा मानते हैं, परन्तु हमारा इससे मतभेद है।

योग सम्बन्धी जानकारी : योग सम्बन्धी जानकारी भी आपकी ज्योतिष के ही समान थी। योग-सम्बन्धी जानकारी आपकी सुनी और सत्संगी बातों पर ही आधारित थी। संत कवियों की वाणी का भी आप पर प्रभाव था और जो कुछ शब्दावली आपकी रचनाओं में योग-सम्बन्धी मिलती है वह वहीं से ली गई है। गढ़ इत्यादि छेकने की बातें कबीर-कालीन ही हैं और उनका प्रयोग आपने अपने काव्य में समय तथा विषय के उपयुक्त किया है। तप का एक चित्रण देखिए :

राजा इहाँ ऐस तप झूरा। भा जरि बिरह छार कर कूरा॥
नैन लाइ सो गएउ बिमोही। भा बिनु जिउ, जिउ दीन्हेसि ओही॥
कहाँ पिंगला सुखमन नारी। सूनि समाधि लागि गई तारी॥
बूँद समुद्र जैस होइ मेरा। गा हेराइ अस मिलै न हेरा॥
रंगहि पान मिला जस होई। आपहि खोहि रहा होई सोई॥
सुए जाइ जब देखा तासू। नैन रकत भरि आए आंसू॥
सदा पिरीतम गाढ़ करेई। ओहि न भुलाइ, भूलि जिउ देई॥
भूरि सजीवन आनि कै, औ मुख मेला नीर।
गरूढ़ पंख जस झारैं, अमृत बरसा कीर॥

इस प्रकार योग की पिंगला और सुषम्ना नाड़ी का भी ऊपर कवि ने जिक्र कर दिया है। परन्तु इससे यह पता नहीं चलता कि कवि को योग की पूरी क्रियाओं का ज्ञान था। आपका सम्बन्ध केवल प्रेम-योग से था और उसी के अनुसार जहाँ कहीं भी आत्मा को कष्ट की कसौटी पर कसने की बात आती है तो आप कुछ योग सम्बन्धी शब्दों का प्रयोग करके उस परिस्थिति को लाने का प्रयास करते हैं।

इस्लाम धर्म की जानकारी : जायसी को इस्लाम धर्म तथा उसकी मान्यताओं

का पूरा-पूरा ज्ञान था। पद्मावत में आपके इस्लामी ज्ञान की पूरी-पूरी झलक मिलती है। कुरान शरीफ की आयतों का सार आपने कई स्थानों पर दिया है :

१. सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर।

२. कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू॥

कयामत के दिन का भी कवि ने उल्लेख किया है कि जब खुदा के सामने अच्छे और बुरे लोग पेश किये जायेंगे, उस समय जो लोग मुहम्मद साहब के मजहब में ईमान रखने वाले होंगे उनकी तरफ से मुहम्मद साहब स्वयं प्रार्थना करेंगे :

गुन-अवगुन विधि पूछब, होइहि लेख औ जोख।
वै बिनउब आगे होई, करब जगत कर मोख॥

पैगम्बर मूसा की किताब में एक फल विशेष के खाने के कारण आदम के स्वर्ग से निकाले जाने का वृत्तान्त है। मुसलमान इस फल को गेहूँ मानते हैं। इस बात का अखरावट और पद्मावत, दोनों में जिक्र आता है। एक और भी वृत्तान्त एक पुल का आता है जो स्वर्ग के मार्ग में पड़ता है। यह 'पुले सरात' कहलाता है। इस पुल के नीचे नर्क का अंधेरा है। यह पुल नेक आदमियों के लिए फैल जाता है और जब पापी आदमी उधर से गुजरते हैं तो यह तलवार की धार के समान सिकुड़ जाता है। इस पुल का भी उल्लेख पद्मावत तथा अखरावट दोनों में है। गेहूँ वाली कथा का उल्लेख देखिए :

आदि अंत जो पिता हमारा। ओहु न यह दिन हिए विचारा॥
छोह न कीन्ह निछोही ओहू। का हम्ह दोष लाभ एक गोहूँ॥

फारसी की शायरी की जानकारी : जायसी की कविता पर फारसी की शायरी का काफी प्रभाव है। आज उर्दू की शायरी पर जो नाजुक खयाली का प्रभाव है वह फारसी का ही है। फारसी की बहुत सी उक्तियाँ पद्मावत में मिलती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने फिरदौसी के शाहनामे की एक पंक्ति का जायसी की पंक्ति से साम्य दिखलाया है, जिन का अर्थ हू ब हू एक है।

सत खँड धरती भई षट खंडा। ऊपर अस्ट भए बरम्हंडा।

पद्मावत :

जे सम्मे सितौराँ दरा पह्न दश्त। जमीं शश शुदो आस्माँ गश्त हश्त।

शाहनामा :

इसी प्रकार के और भी अनेकों प्रयोग कवि ने किये हैं। फारसी की शायरी का जायसी को अच्छा ज्ञान था और उसकी भावनाओं का ज्यों-का-त्यों उनकी कविता में आजाना स्वाभाविक भी था।

पौराणिक जानकारी : जायसी ने पद्मावत में बहुत से पौराणिक प्रसंगों को भी लिया है। उनमें शिव, पारवती, नारद इत्यादि का उल्लेख है। नारद को कामों में विघ्न डालने वाले के रूप में ही आपने चित्रित किया है। उसका सही पौराणिक स्वरूप स्थापित

करने में जायसी असमर्थ रहे हैं। इसी प्रकार शिव और पार्वती का उल्लेख करते समय भी पौराणिक मान्यताओं को निभाना उनके लिए कठिन हो गया है। इस प्रकार पौराणिक प्रयोगों में जायसी भूलें कर गये हैं। जायसी की ये भूलें इसी कारण हैं कि उनका पौराणिक साहित्य पर आधारित न होकर मौखिक वार्ताओं और फिर उनका अपने ढंग से विवेचन करने पर आधारित रहा है।

सारनिरूपण

महाकवि जायसी की साहित्यिक जानकारी संस्कृत-काव्य और रीति ग्रन्थों पर आधारित न होकर समकालीन साहित्य तथा अपभ्रंश-साहित्य पर आधारित थी। उनकी भाषा, कथा-प्रयोग अलंकार तथा छन्दों के देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनपर संस्कृत-साहित्य का प्रभाव नहीं है। जायसी की वर्णन-शैली पर भी संस्कृत प्रभाव न होकर अपभ्रंश का ही प्रभाव अधिक है।

देश के स्थानों की जानकारी जायसी को काफी थी। इस सम्बन्ध में आपकी जानकारी समकालीन तो थी ही वरन् प्राचीन प्रसिद्धियों का भी आपको काफी ज्ञान था। देश के विभिन्न शहरों, प्रदेशों, समुद्रों उनके किनारों इत्यादि, सभी का इन्हें ज्ञान था।

जायसी की ऐतिहासिक जानकारी भी कम नहीं थी। पद्मावत का उत्तरार्द्ध इतिहास के बहुत निकट है। उनकी कथा में इतिहास-तत्त्व की अवहेलना नहीं मिलती, वरन् उसकी मान्यता को स्थापित ही किया गया है।

जायसी को ज्योतिष का भी ज्ञान था और जो उदाहरण उन्होंने स्थान-स्थान पर दिये हैं वे ज्योतिषाचार्यों ने गलत साबित नहीं किये। परन्तु फिर भी उन संकेतों के आधार पर आपको ज्योतिषाचार्य घोषित कर देना हम युक्तिसंगत नहीं समझते।

जायसी को योग-सम्बन्धी भी जानकारी थी। योग-सम्बन्धी शब्दों का भी आपने प्रयोग किया है, परन्तु अव्यवस्थित रूप से। कबीर-जैसा योग-सम्बन्धी ज्ञान आपको नहीं था। फिर भी शाब्दिक प्रयोग आपका गलत नहीं है।

जायसी का इस्लाम-धर्म सम्बन्धी ज्ञान काफ़ी व्यापक था और कुरान शरीफ की बहुत सी मान्यताओं का उल्लेख आपने सिद्धान्त रूप से पद्मावत में किया है। जीव, प्रकृति, ब्रह्म इत्यादि का वर्णन आपने उसी आधार पर किया है।

जायसी का फारसी शायरी का भी अच्छा अध्ययन था। आपकी कविता पर फारसी-शायरी का काफी प्रभाव है। नाजुक खयालियाँ तो हैं ही फारसी कविता की देन। फारसी की बहुत सी उक्तियों का कवि ने पद्मावत में समावेश किया है।

जायसी ने पद्मावत में बहुत सी पौराणिक बातें भी देने का प्रयास किया है, परन्तु उसमें आप भूलें कर गये हैं क्योंकि आपकी पौराणिक जानकारी पौराणिक ग्रन्थों पर आधारित नहीं थी। आपकी यह जानकारी सुनी-सुनाई बातों पर आधारित थी।

संक्षिप्त

१. जायसी के काव्य पर संस्कृत-काव्य, रीति-ग्रन्थों इत्यादि का प्रभाव न होकर देशज तथा अपभ्रंश-साहित्य का प्रभाव है।

२. जायसी को देश के स्थानों, नगरों, समुद्रों, उनके तटों इत्यादि का अच्छा ज्ञान था।

३. जायसी की ऐतिहासिक जानकारी बहुत व्यापक थी।

४. जायसी ज्योतिषाचार्य न सही परन्तु उन्हें ज्योतिष का ज्ञान अवश्य था।

५. जायसी को योग का भी साधारण ज्ञान था।

६. जायसी को इस्लामी मान्यताओं, ग्रन्थों इत्यादि की पूरी जानकारी थी।

७. जायसी का फारसी कविता का भी अच्छा अध्ययन था। उसका प्रभाव भी उनकी कविता पर पड़ा है।

८. जायसी को पौराणिक ज्ञान कम था। इसीलिए पौराणिक प्रयोगों में वह बहुत सी भूलें कर गये हैं।

नहीं किया और न ही उस ओर कभी ध्यान दिया। जिन तत्वोंको आपने लिया है, उनके मूल रूप को ही ग्रहण किया है। ब्रह्म, माया, प्रकृति, जीव इत्यादि के विवेचन भी आपने प्राचीन मान्यताओं के आधार पर ज्यों-के-त्यों कर दिये हैं। उनमें आपकी ओर से किसी नवीनता का आविष्कार नहीं किया।

जायसी ने वास्तव में विचार के क्षेत्र में क़दम रखने का प्रयास ही नहीं किया और साथ ही कहीं पर अपने को आचार्य समझने का दावा भी नहीं किया।

मानवता वादी भावनात्मक व्यक्ति के नाते

भावना 'जायसी' के जीवन की प्रधानता है। मस्तिष्क-बल की अपेक्षा हमें कवि में हृदय-बल ही अधिक दिखलाई देता है। जायसी ने धर्म और साहित्य के विचार-पक्ष को न छूकर केवल भावना-पक्ष को ही छुआ है और उसी के आधार पर अपनी सब धार्मिक तथा बौद्धिक मान्यताओं को प्रतिपादित किया है। जायसी ने जीवन के जिस पहलू को भी देखा है, बहुत ही सहृदयता के साथ देखा है।

जायसी एक मानववादी व्यक्ति थे। मानव के सामने उनके सभी धर्म पीछे रह जाते थे। मानवीय सिद्धान्तों के बीच कभी भी उनका धर्म बाधा स्वरूप नहीं आता था। महाकवि जायसी ने अपने साहित्य में हिंदू तथा मुसलमानी विचार-धाराओं के सामान्य रूप में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। आध्यात्मिक तत्वों के जटिल विवेचनों द्वारा दोनों धर्मों में सामंजस्य स्थापित करना उनके लिए कठिन था, परन्तु मानवीय जीवन की सरल आवश्यकताओं के क्षेत्र में उनका भावनात्मक साम्य स्थापित करना कठिन नहीं था। वही महाकवि जायसी ने किया। उन्होंने मानवीय क्षेत्र में दोनों को एक स्तर पर रखकर अपने साहित्य में समान रूप से दोनों को अपनाया और यहाँ तक कि अपने प्रधान पात्रों को हिन्दुओं में से ही चुना, मुसलमानों में से नहीं। फिर उनकी धार्मिक मान्यताओं को भी महाकवि कबीर की भाँति नश्तर लेकर छीलने वाली प्रवृत्ति उनकी नहीं रही। उन्होंने सभी मान्यताओं को सहृदयता के साथ परखा और जनता के सामने रखा।

महाकवि जायसी मुसलमान-धर्म के उन संत फ़कीरों में से थे जो जबान से धर्म-परिवर्तन की बात करना पसंद नहीं करते थे। वे अपने जीवन में अपने सिद्धान्तों को घटाते थे, अपने आचरण अपने सिद्धान्तों के अनुकूल बनाते थे, अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों से प्रेम, मोहोब्बत, सचाई, सद्भावना और सहिष्णुता से बातें और व्हार करते थे। उनके दुख दर्द को समझते और उसे अपनी शक्ति के अनुसार दूर करने का प्रयास करते थे। उनके इस आचरण का प्रभाव जनता और राजे-महाराजों तक पर पड़ता था और वे सभी उनका आदर करते थे। इच्छाएँ इनकी कुछ होती ही नहीं थीं। इनका यही चरित्र इनके सिद्धान्तों का प्रचार करता था और लोगों को इनका मुरीद बना कर

इनकी मान्यताओं का प्रचार करता था। जायसी के सिद्धान्तवाद की अपेक्षा उनका जीवन ही उनकी मान्यताओं का आदर्श था, वही उनका धर्म-ग्रंथ था और वही उनकी उपदेश तथा प्रचार-प्रणाली। जायसी की मान्यताओं को अपनाने की प्रेरणा उनके भक्तों और मुरीदों को व्यवहार से ही मिलती थी, उसका उनके जीवन पर चमत्कारात्मक प्रभाव भी पड़ता था।

विचारक के नाते

'जायसी' कबीर की भाँति विचारक नहीं थे, वह तो सूर तथा मीरा की भाँति स्वयं भी एक साधक ही थे और प्रेम-साधना के मार्ग पर चलकर उन्हें जो सिद्धि मिली थी वह विचार की अपेक्षा भावना के अधिक निकट थी। धर्म की परिभाषायें ऊपरी रूप से मुसलमानी मान्यताओं को ही लेकर चलती थीं परन्तु उनकी विचारधारा में सामान्य भक्ति और प्रेम का ही रूप अधिक स्पष्ट रूप से मुखरित होता था। प्रेम की साधना में जीवन व्यतीत करने वाले इस प्रेमी का जीवन आध्यात्मिक तत्त्वों की जटिलताओं के विवेचन की ओर उतना झुका हुआ नहीं था जितना सूफी सिद्धान्तों के आधार पर भगवान् के प्रेम में मग्न होकर उसमें लीन हो जाने की ओर था। जायसी ने अपने धर्म या उसकी मान्यताओं को लेकर कोई नये सिद्धान्तों या विचारों को नहीं गढ़ा और न ही उन की कुछ नये ढंग से विवेचना ही की। पुरानी चली आती हुई मान्यताओं को ही लेकर आपने अपने जीवन में ढाला और अपने साहित्य में उनका प्रतिपादन किया, तथा उनके अच्छे और सरल तत्त्वों को अपनाने का प्रयास किया।

जायसी कोमल भावनाओं का चितेरा है, जिसने मानव-जीवन के भावनात्मक पहलुओं को समझने और अपने साहित्य में स्पष्ट करने के अन्दर कमाल किया है। प्रेमी आत्माओं की तड़प का जैसा सजीव चित्रण महाकवि जायसी ने किया है वैसा हिन्दी-साहित्य में सूर और मीरा के अतिरिक्त अन्य किसी भी कवि के अन्दर नहीं मिलता। जहाँ जायसी मानव-जीवन की प्रेममयी भावना के अन्दर घुसता है, वहाँ उसकी नज़र से उसकी कल्पना, उसकी भावना के दायिरे से धर्म और आध्यात्मिक तत्व-विवेचन दूर जाकर खड़े हो जाते हैं। महाकवि जायसी ने अपने पात्रों के हृदयों से अपने हृदय को मिलाकर देखा है और उनकी भावनाओं को अपने हृदयों में भरकर साहित्य में संनिहित कर दिया है।

जायसी भावनाओं का चितेरा है जिसने स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों और उनकी कोमल भावनाओं को बहुत ही सहृदयता से अंकित किया है। कवि ने सूफी सिद्धान्तों के अनुसार परमात्मा को माशूक के रूप में स्त्री स्वरूप देखा है, और पद्मावती का चित्रण कवि ने परमात्मा के रूप में किया है। आत्मा रत्नसेन परमात्मा पद्मावती के रूप का वर्णन तोते गुरू से प्राप्त करके उससे मिलने के लिए प्रेम-विह्वल हो उठता है। कवि क्यों कि प्रेम का भावनात्मक चितेरा है इस लिए रूप-सौंदर्य ही उसके

लिए सब कुछ है और उसी के लिए वह व्याकुल है। लौकिक जगत की सुन्दर-से-सुन्दर वस्तु का स्त्री रूप में कवि चित्रण करता है और वही स्त्री उसकी प्रेमिका है जिसके रूप में परमात्मा का अपार सौंदर्य विद्यमान है। इस अलौकिक सौंदर्य की प्रतिमा के ऊपर संसार की सब सुख समृद्धियाँ न्यौछावर हैं। जिस तरह गोकुल की गोपियाँ कृष्ण की मुरली की पुकार सुनकर लोक-लाज का परित्याग कर कृष्ण के पास पहुँच जाती थीं, उसी प्रकार जायसी का रत्नसेन भी नागमती और अपने राज्य तथा सब सुख-वैभव का परित्याग करके पद्मावती को प्राप्त करने के लिए निकल जाता है। परन्तु यहाँ परमात्मा का मिलना उतना सुलभ नहीं जितना गोपियों तथा राधा को कृष्ण का मिलन था। यहाँ जायसी की मिलन-पद्धति पर कबीर की हठयोगी मान्यताओं का प्रभाव है। उसके मिलन-मार्ग में अनेकों संकट और कठिनाइयाँ आती हैं और उन्हें पार करके अन्त में पद्मावती के पास तक पहुँचा जाता है। उसका मार्ग-प्रदर्शन करने वाला तोता-गुरू उसके साथ हैं। गुरू की भावना में भी कबीर की मान्यता का प्रभाव हमें स्पष्ट दिखलाई देता है।

प्रेम-पद्धति में मिलन और बिछोह दोनों ही परिस्थितियों के जीवन में आने वाले प्रभावों का जायसी ने कल्पनातीत चित्रण किया है। जीवन की विविध परिस्थितियों में कैसी कैसी भावनाएँ उभरकर आती हैं और विशेष रूप से प्रेम-व्यवहारों में चित्त और मन की क्या दशा होती है, उसका शरीर और जीवन के कार्य-कलापों पर क्या-क्या प्रभाव पड़ता है, इसका जायसी से अधिक सजीव चित्रण अन्य कवि नहीं कर पाये हैं।

महाकवि जायसी ने भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के प्रेम का पद्मावत में सामंजस्य स्थापित किया है और दोनों की ही परिस्थितियों का खूब उभार कर चित्रण किया है। जायसी प्रेम-काव्य का हिन्दी में सबसे कुशल कलाकार है।

एक साहित्यिक के नाते

साहित्य के क्षेत्र में जायसी का जहाँ तक भाषा से सम्बन्ध है, वह उसने जन-भाषा को अपनाया है। परन्तु जन-भाषा होने का यह तात्पर्य नहीं कि वह उनकी भावनाओं और विचारों को पूर्ण रूप से व्यक्त ही न कर सकी हो। जायसी की भाषा उनके भावों को व्यक्त करने में पूर्णरूप से सफल है और कहीं-कहीं तो वह सादगी में साकार अलंकार बन गई है।

भाषा में अलंकारों का जहाँ तक सम्बन्ध है कवि ने शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालङ्कारों का ही अधिक प्रयोग किया है और वह भी सादृश्य मूलक अलंकारों का। अलंकारों की भरमार करके उनके नीचे भाव, विचार और कथा को दबा देना उसका उद्देश्य नही रहा बल्कि इनके सहायक तथा पोषक साधनों के रूप में ही उसने अलंकारों का प्रयोग किया है।

भाषा और अलंकारकि सौंदर्य के पश्चात् साहित्य में कथा, चरित्र-चित्रण, विचार

तथा भावनाएँ आती हैं। जहाँ तक विचार और भावना का सम्बन्ध है वह हम ऊपर संकेत कर चुके हैं। कथा-तत्त्व का निर्वाह जायसी ने बहुत सुन्दर किया है। कल्पना और इतिहास का सुन्दर सामंजस्य हमें जायसी के काव्य में देखने को मिलता है। कथा के अन्दर उपकथाएँ आती हैं, जो प्रधान कथा की पोषक होती हैं। उनसे कहीं भी प्रधान कथा के फैलाव में बाधा उपस्थित नहीं होती। कथा के क्रमिक विकास में जायसी को पूर्ण सफलता मिली है।

चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में कवि ने विशेष रूप से किसी पात्र के चरित्र पर प्रकाश नहीं डाला। कथा-प्रवाह और विषय के स्पष्टीकरण में पात्र स्वयं निखरते हैं और उनका चरित्र सामने आता है। काव्य के विकास के साथ-साथ पात्रों के नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन का विकास होता है। प्रत्येक पात्र अपनी-अपनी जीवन-स्थिति के अनुसार निखर कर सामने आता है।

जायसी का प्रधान काव्य पद्मावत है। यह प्रेम-काव्य है, और इसके अन्दर जीवन की प्रेम-परिस्थितियों का चित्रण कवि ने बहुत ही कलात्मक ढंग से किया है। कवि का किसी भी बात को कहने का ढंग बहुत सरल और सादा है, परन्तु क्योंकि वह जीवन की गहराई को सचाई के साथ अपने में संजोकर चलता है इस लिए उसमें हृदय को छूलेने की शक्ति विद्यमान रहती है।

महाकवि जायसी का साहित्य सरल तथा स्पष्ट है। उसमें न तो पांडित्य-प्रदर्शन की ठरक ही है और न बातों को घुमा फिराकर कहने की ही प्रणाली को अपनाया गया है। जीवन के मार्मिक स्थलों के सरल भाषा और सरल प्रणाली में किये गये चित्रण इतने प्रभावात्मक हो उठे हैं कि पाठक उन्हें पढ़कर द्रवित न हो, यह असम्भव है।

जायसी के साहित्य में श्रृंगार और करुण रस का प्रवाह बहुत ही स्वाभाविक ढंग से हुआ है। नागमती का विरह-वर्णन कवि की अनूठी कला का द्योतक है। उसमें भावना के कवि ने साकार चित्र उपस्थित किये हैं :

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कंत पियारा बाहरै, हम सुख भूला सर्ब ॥
सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी।
लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भई बाउरि, कहँ कंत सरेखा ॥
रकत कै आंसु परहिं भुइँ टूटी। रेंगि चलीं जस बीर बहूटी।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियरि भूमि, कुसुम्भी चोला ॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देउ झकझोरा।
बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी ॥
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिन थाकी।

परबत समुद अगम बिच, बीहड़ घन बन ढाँख।
किमिकै भेटौं कंत तुम्ह ? ना मोहि पाँव न पाँख ॥

इस प्रकार हमने देखा कि महाकवि जायसी भावनाओं के वह सरल चितेरे हैं कि जिनके काव्य में जीवन की कोमल तथा सरल और मधुर भावनाएँ रंगीन कल्पनाओं के साथ खिल उठी हैं। जो कुछ भी कवि ने कहा है वह बहुत ही सरल तथा स्वाभाविक ढंग से कहा है और इसी लिए वह बहुत प्रभावात्मक भी हो गया है। सरल प्रेम के पुजारी जायसी ने पद्मावती में अलौकिक रूप सौंदर्य की प्रतिष्ठा की है और इसीलिए उसकी प्राप्ति रत्नसेन को इतनी कठिनाइयों का सामना करके, बन जंगलों तथा सात समुद्रों को पार करके करनी होती है। कवि ने पद्मावती की लोक-प्रसिद्ध कथा को, जिसके लिए हिन्दुओं में एक विशेष आस्था और सम्मान पैदा हो चुका था, अपनी कल्पना की चाशनी में पाग कर और भी आकर्षक तथा मधुर बना दिया है।

महाकवि जायसी का स्थान हिन्दी में एक साहित्यिक के नाते बहुत ऊँचा है। प्रेम-काव्य का वह महानतम कलाकार है और अपना सानी भी नहीं रखता। प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से भी गोस्वामी तुलसीदास के मानस के पश्चात् पद्मावत का ही नम्बर आता है। विरह और शृंगार के चित्रण में महाकवि सूर और मीरा के कुछ पदों को ही इनकी समानता में रखा जा सकता है। नागमती का विरह और गोपियों का विरह मूलरूप से एकसा ही है। जायसी का चित्रण बहुत ही मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली हुआ है। उर्दू की नाजुक खयाली कहीं-कहीं पर आजाने से उसमें भारतीय संस्कृति की सात्विकता को ठेस सी लगती प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में यदि उसे हमें सूफ़ी मान्यताओं की रोशनी में रखकर विचार करते हैं तो वह कमो कमी नहीं रह जाती, बल्कि उत्कर्षात्मक प्रवृत्ति के रूप में सामने आती है।

सारनिरूपण

महाकवि जायसी मुसलमानी आस्थाओं में विश्वास रखने वाले सूफ़ी मुसलमान थे और अपनी ही मान्यता का प्रचार उन्होंने किया है। मुसलमान धर्म के प्रवर्तकों में उनका पूर्ण विश्वास था और उनकी मान्यताओं तथा पाबन्दियों की रूढ़ियों का उनपर असर था। वह एक सूफ़ी मुसलमान थे और मुसलमानी दर्शन के प्रति ही उनकी मान्यता थी।

मुसलमान होते हुए भी जायसी मानवतावादी थे। उनके इन्सानियत के उसूलों के बीच में धर्म नहीं आता था। सरल, सहृदय और दयालू व्यक्ति होने के नाते वह इन्सान्यित के स्तर पर हिन्दू और मुसलमान में भेद नहीं समझते थे। इसीलिए हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके मुरीद थे। अमैठी के हिन्दू राजा इनका बड़ा सम्मान करते थे। यह धर्म का प्रचार व्याख्यान इत्यादि देकर नहीं करते थे वरन इन्होंने अपने जीवन

को अपने सिद्धांतों के ढांचे में इस प्रकार ढाला था कि उसका इनके सम्पर्क में आने वालों पर प्रभाव पड़ता था और वे इनके उसूलों से आकर्षित होकर इन पर ईमान ले आते थे।

जायसी भावुक कवि थे, विचारक नहीं। जहाँ तक उनकी आध्यात्मिक मान्यताओं का सम्बन्ध था यह उन्हीं मान्यताओं को मानते थे जो मुसलमान धर्म और विशेष रूप से सूफ़ी धर्म-प्रवर्तकों द्वारा मानी जाती थीं।

जायसी भावना का कलात्मक चितेरा ही था और मानव-जीवन के पारस्परिक सम्बन्धों तथा व्यवहारों का विशेष रूप से प्रेम के क्षेत्र में कवि ने बहुत ही सरल तथा सरस चित्रण किया है। एक साहित्यिक के नाते जायसी का हिन्दी-साहित्य में अमिट स्थान है। साहित्य के आवश्यक पहलुओं का आपने एक सफल साहित्यकार के नाते चित्रण किया है। प्रेम-काव्य की रचना में जायसी को पूर्ण सफलता मिली है। पद्मावत हिन्दी का सर्व श्रेष्ठ प्रेम-काव्य, और ऊँचे दर्जे का प्रबन्ध-काव्य है।

संक्षिप्त

१. जायसी सूफ़ी मुसलमान थे।

२. यह एक भावना-प्रधान मानवतावादी कवि थे।

३. विचारक के नाते आपने अध्यात्मिक मान्यताओं में प्राचीन मान्यताओं को ही अपनाया है। आपने नवीन सिद्धान्तों का न तो निर्माण ही किया है और न ही प्राचीन सिद्धान्तों का प्रथक रूप से विवेचन ही।

४. आप एक सफल साहित्यकार थे। कल्पना, भावना, अनुभूति, भाषा तथा काव्यलंकारों की दृष्टि से आपका काव्य पद्मावत हिन्दी में अपना विशेष स्थान रखता है।

अध्याय १०

प्रेम-साहित्य की परम्परा

हिन्दी साहित्य के इतिहास में वीरगाथा काल के पश्चात् भक्ति-काल आता है। इस काल का नाम भक्ति-काल इसलिए पड़ा कि इसमें अधिकांश कवि भक्ति विषयक रचनाओं को लेकर ही साहित्य में अवतीर्ण हुए। भक्ति-काल में भक्ति की दो पृथक्-पृथक् धाराएँ प्रवाहित हुईं,—एक निर्गुण मार्गी धारा तथा दूसरी सगुण भक्ति-धारा। निर्गुण भक्ति-धारा के प्रवर्तक स्वरूप महाकवि कबीर साहित्य में आये। निर्गुण भक्ति की भी दो शाखाएँ एक दूसरी से भिन्न आदर्शों तथा मान्यताओं को लेकर सामने आईं। इनमें प्रथम तो ज्ञानाश्रयी शाखा रही, तथा दूसरी ने प्रेमाश्रयी रूप धारण किया।

निर्गुणोपासक भक्तों की यह दूसरी शाखा सूफ़ी फ़कीरों की थी जिन्होंने प्रेम-ग्रन्थों के द्वारा प्रेम-तत्व का वर्णन किया। लौकिक प्रेम में पारलौकिक प्रेम की झाँकी दिखला कर इन लोगों ने प्रेमगाथाओं का चित्रण किया। सूफ़ी फ़कीरों की इसी शाखा ने हिन्दी को प्रेम-रस पूर्ण साहित्य की अपूर्व निधि प्रदान की। इस धारा के अंतर्गत बहुत से कवि आये परन्तु इनमें सर्व श्रेष्ठ स्थान मलिक मुहम्मद जायसी का है। इस अध्याय में हम इस परम्परा के लेखकों तथा उनकी रचनाओं का उल्लेख करेंगे।

कुतबन : कुतबन शेख बुरहान के शिष्य थे। शेख बुरहान चिश्ती वंश से सम्बन्ध रखते थे। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के मध्यकाल (संवत् १५५०) में इनका जीवन-समय आता है। आपने संवत् १५५८ में मृगावती नाम की एक प्रेम-कहानी दोहे तथा चौपाइयों में लिखी। इसमें चन्द्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारि की मृगावती कन्या की प्रेम-कहानी का कवि ने चित्रण किया है। इस काहनी में कवि ने प्रेम के लिए किये गये त्याग और प्रेमिका की प्राप्ति में उठाये गये कष्ट का वर्णन किया है। एक साधक भगवान् की भक्ति में किस प्रकार कष्ट उठाता है इसकी झलक हमें इस ग्रन्थ में मिलती है। कथा-प्रवाह के बीच सूफ़ी शैली के आधार पर स्थान-स्थान पर रहस्यात्मक चित्रण भी मिल जाता है। कहानी इस प्रकार है कि चन्द्रगिरि के राजा गणपतिदेव का पुत्र कंचन नगर के राजा रूपमुरारि की राजकुमारी मृगावती पर मोहित हो जाता है। यह राजकुमारी बड़ी अनोखी और सुन्दर है तथा यह

उड़ने की विद्या में भी निपुण है। राजकुमार अनेकों कष्ट सहन करके उनके पास तक पहुँचता है। लेकिन राजकुमारी एक दिन राजकुमार को धोखा देकर कहीं उड़ जाती है। राजकुमार उसकी खोज में योगी बनकर निकल पड़ता है। मार्ग में समुद्र के बीच एक पहाड़ी पर रुकमनी नामक एक सुन्दरी को वह एक राक्षस से बचाता है। उस युवती का पिता राजकुमार से उसका विवाह कर देता है। फिर भी राजकुमार मृगावती की खोज नहीं छोड़ता और उस देश में पहुँच ही जाता है जहाँ वह अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् राज करती हुई मिलती है। वहाँ वह बारह वर्ष रहता है। राजकुमार का पिता उसका पता लगाने पर वहाँ अपना दूत भेजता है। पिता का संदेश पाकर वह मृगावती को साथ लेकर वहाँ से चल पड़ता है। मार्ग में से वह रुक्मनी को भी ले लेता है। राजकुमार काफी दिन तक आनंद-सुख भोगता है और उसकी मृत्यु एक दिन आखेट में हाथी से गिरकर होती है। उसकी दोनों रानियाँ सती हो जाती हैं।

सती की प्रथा का प्रभाव प्रेम-काव्यकारों की रचनाओं पर मिलता है। प्रेमी के विरह में जल मरने की बात सम्भवतः हिन्दू धर्म की मान्यता के रूप में न अपनाकर उन्होंने प्रेम-मार्गीय मान्यता के रूप में अपनाई है।

मंझन : कवि मंझन के जीवन-सम्बन्धी कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। उनकी रचना मधुमालती की एक खंडित प्रति मिलती है। मधुमालती की रचना भी कवि ने दोहे और चौपाइयों में की है। पाँच-पाँच चौपाइयों के पश्चात् एक दोहा आता है। मृगावती की अपेक्षा मधुमालती की कल्पना अधिक सजीव और मधुर है। इस रचना को देखने से कवि की स्निग्धसहृदयता और सजीव कल्पना का पता चलता है। इस काव्य में कवि-कल्पना बहुत ही विशद है। वर्णन भी बहुत व्यापक और सजीव तथा साकार है। मंझन ने आध्यात्मिक तत्वों का निरूपण प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण द्वारा ही किया है।

मधुमालती की कथा इस प्रकार है कि कनेसर नगर के राजकुमार मनोहर को सुप्तावस्था में ही उठाकर कुछ अप्सरायें महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में रख आती हैं। जब राजकुमार की आँखें खुलती हैं तो वह मधुमालती के दर्शन करता है। दोनों एक दूसरे को देखकर मोहित हो जाते हैं। मनोहर पूछने पर अपना परिचय देता है। बातें करते-करते दोनों सो जाते हैं। सोने पर अप्सरायें मनोहर को वहाँ से उठाकर फिर उसी के देश में छोड़ आती हैं। जब दोनों की आँखें खुलती हैं तो दोनों एक दूसरे के प्रेम में व्याकुल हो उठते हैं। राजकुमार वियोगाकुल होकर घर से निकल पड़ता है और समुद्र-मार्ग से यात्रा करता हुआ दूर परदेश में निकल जाता है। समुद्र में तूफ़ान आता है और जहाज डूब जाता है तथा साथी सब बिछुड़ जाते हैं। राजकुमार एक टूटे पटरे पर बैठा हुआ एक जंगल में जा पहुंचता है। वहाँ एक स्थान पर एक पलंग के ऊपर उसे एक सुन्दरी लेटी हुई मिलती है। पूछने पर ज्ञात होता है कि वह चितविसरामपुर की राजकुमारी प्रेमा है और वहाँ उसे एक राक्षस उठा लाया है।

मनोहर उस राक्षस को मारकर प्रेमा का उद्धार करता है।

प्रेमा यहाँ मधुमालती को अपनी सखी बतलाती है और मनोहर को आश्वासन देती है कि वह उससे मनोहर को मिला देगी। मनोहर और प्रेमा यहाँ से प्रेमा के पिता के राज्य में पहुँचते हैं। वहाँ प्रेमा का पिता प्रेमा के उद्धार की गाथा सुनकर उसका विवाह मनोहर से करना चाहता है परन्तु प्रेमा उसे भाई स्वरूप ही ग्रहण करती है और कहती है कि उसने उसको प्रेम पात्री मधुमालती से मिलाने का उसे वचन दिया है। दूसरे दिन मधुमालती अपनी माता रूपमंजरी के साथ प्रेमा के घर आती है और वहीं पर मनोहर राजकुमार से उनका साक्षात्कार होता है। दूसरे दिन प्रेममंजरी ने मधुमालती और मनोहर को साथ-साथ पाया। यह बात प्रेममंजरी को पसंद नहीं आई और जब दूसरे दिन सवेरे मनोहर उठा तो उसने सुना कि प्रेममंजरी अपनी पुत्री मधुमालती को बुरा-भला कह रही थी और कह रही थी कि वह मनोहर को छोड़ दे। जब मधुमालती ने अपनी मता की यह बात न मानी तो उसकी माता ने उसे पक्षी बन जाने का श्राप दे दिया। मधुमालती चिड़िया बनकर उड़ती-उड़ती बहुत दूर निकल गई। इस चिड़िया पर कुँवर ताराचन्द नामक राजकुमार की दृष्टि पड़ी और उन्हें यह बहुत पसन्द आई। ताराचन्द ने उसे पकड़ना चाहा। चिड़िया को ताराचंद का रूप कुछ कुछ मनोहर जैसा लगा, वह ठिठकी और पकड़ली गई। ताराचंद ने उसके लिए सोने का पिंजड़ा बनवा दिया। एक दिन इस चिड़िया ने ताराचंद से अपने प्रेम की पूरी कहानी कह सुनाई। उसे सुनकर ताराचंद बहुत द्रवित हुआ और उसने वचन दिया कि वह उसे मनोहर से अवश्य मिलायेगा। ताराचंद उस पिंजड़े को लेकर महारसनगर में पहुँचा। वहाँ मधुमालती की माता, जो उसके चले जाने पर बहुत दुखी हो रही थी, उसे पाकर प्रसन्न हुई और उसपर जल छिड़ककर उसे फिर उसी रूप में बदल दिया। मधुमालती के माता पिता ने ताराचंद के साथ मधुमालती का विवाह करने का विचार किया, परन्तु ताराचंद ने मधुमालती को अपनी भगिनिस्वरूप ग्रहण किया और विवाह करने से इंकार कर दिया। उसने कहा, "मधुमालती मेरी बहिन है और मैंने उससे प्रतिज्ञा की है कि मैं जैसे भी होगा उसकी भेंट मनोहर से कराऊँगा।" मधुमालती की माता ने फिर यह वृतान्त प्रेमा के पास लिख भेजा। इसी समय मधुमालती की एक सखी आकर सूचना देती है कि मनोहर योगी के रूप में उनके द्वार पर आ पहुंचा है।

मधुमालती और मनोहर का विवाह हो जाता है। मनोहर, मधुमालती और ताराचंद बहुत दिन तक प्रेमा के यहाँ रहते हैं। यहाँ ताराचंद प्रेमा पर मोहित होकर मूर्छित हो जाता है।

इससे आगे की पाँडुलिप फट गई है। परन्तु हुआ यही होगा कि ताराचंद और प्रेमा का विवाह हो गया हो। मधुमालती पर भारतीय आदर्शों का प्रभाव बहुत अधिक है। भक्ति की भावना का जो रूप इसमें सामने आता है वह हिन्दू धर्म की अपनी

विशेषता है। प्रेमा का मनोहर को भ्राता स्वरूप ग्रहण करना और ताराचंद का उसी प्रकार मधुमालती को बहिन स्वरूप ही ग्रहण करना, इस काव्य की सैद्धान्तिक विशेषताएँ हैं।

इस ग्रंथ में नायक और नायिका के अतिरिक्त कवि ने उपनायक और उपनायिका की भी सृष्टि की है। सच्ची सहानुभूति और मानव का मानव के प्रति भावनात्मक आकर्षण करना प्रदर्शित किया गया है। प्रेम-तत्त्व की अखंडता को कवि ने प्रतिपादित किया है। ईश्वर के विरह का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है :

बिरह-अवधि अवगाह अपारा। कोटि माहिं एक परै न पारा॥
बिरह की जगत अँबिरथा जही। बिरह रूप यह सृष्टि सबाही।
नैन बिरह-अंजन जिन सारा। बिरह रूप दरपन संसारा॥
कोटि माँहि बिरला जग कोई। जाहि सरीर बिरह-दुख होई॥
रतन की सागर सागरहि? गज मोती गज कोई।
चंदन कि बनी बन उपजै, बिरह कि तन-तन होई।

—हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल-पृष्ठ ६७

विरह का चित्रण कवि ने बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है। सूफी प्रेममार्गीय कवियों ने अपनी कथाओं के बीच-बीच में ईश्वरीय प्रेम की झाँकी दिखलाई है और जहाँ भी उन्हें सौंदर्य के दर्शन होते हैं वहाँ ईश्वर की ज्योति दिखलाई देती है :

देखत ही पहिचानेउ तोहीं। एही रूप जेहि छंदरयो मोही॥
एही रूप बत अहै छपाना। एही रूप रब सृष्टि समाना॥
एही रूप सकती और सीऊ। एही रूप त्रिभुवन कर जीऊ॥
एही रूप प्रगटे बहु भेसा। एही रूप जग रंक नरेसा॥

—हिन्दी-साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल-पृष्ठ ६७

कविवर मंझन का रचना-काल ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है परन्तु यह सम्वत् १५५० और १५९५ के बीच में ही रहा होगा। महाकवि जायसी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ पद्मावत में अपने से पूर्व लिखे गये ग्रन्थों का इस प्रकार उल्लेख किया है :

विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गयेउ पतारा॥
मधूपाछ मुगधावती लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राज कुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ॥
साधे कुँवर खंडावत जोगू। मधु मालति कर कीन्ह बियोगू॥
प्रेमावति कह सुरबर साधा। उषा लागि अनिरुध-बर बाँधा॥

अपने से पूर्व लिखे गये इस प्रकार चार काव्यों का कवि जायसी ने उल्लेख किया है,—मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती। इनमें मधुमालती और मृगावती की खोज हो सकती है और शेष दो के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हो सका।

मलिक मुहम्मद जायसी : जायसी के विषय में यहाँ अधिक लिखना उचित नहीं क्योंकि उनके प्रायः सभी पहलुओं पर हम पीछे प्रकाश डाल चुके हैं। जायसी का प्रधान ग्रन्थ पद्मावत है। पद्मावत की रचना के पूर्व मधुमालती की ख्याति बहुत अधिक थी और इस धारा का यही प्रधान ग्रन्थ समझा जाता था। महाकवि जायसी इस धारा के प्रधान कवि हैं और प्रेम-काव्य पद्मावत इसका प्रधान ग्रन्थ।

उसमान : कविवर उसमान का रचना-काल जहाँगीर के समय में था। यह ग़ाजीपुर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम शेख हुसैन था और ये पाँच भाई थे। इनके चार भाइयों के नाम शेख अजीज, शेख मानुल्लाह, शेख फैजुल्लाह और शेख हसन थे। कविवर उसमान अपना उपनाम 'मान' लिखते थे। यह निज़ामुद्दीन चिश्ती की शिष्य-परम्परा में आने वाले बाबा हाजी के शिष्य थे। उसमान कवि ने १०२२ हिजरी अर्थात् सन् १६१३ ईस्वी में 'चित्रावली' नामक पुस्तक लिखी। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने चार खलीफा, बादशाह जहाँगीर, शाह निजामुद्दीन और बाबा हाजी की मुक्त कंठ से प्रसंसा की है। फिर अपने ग़ाजीपुर नगर का वर्णन किया है। इसी स्थान पर अपने विषय में भी लिखा है :

आदि हुता बिधि माथे लिखा। अच्छर चारि पढ़ै हम सिखा।
देखत जगत चला सब जाई। एक बचन पै अमर रहाई॥
बचन समान सुधा जग नाहीं। जेहि पाए कवि अमर रहाईं॥
मोहूं चाउ उठा पुनि हीए। होउँ अमर यह अमरित पीए॥

चित्रावली में कवि ने महाकवि जायसी का पूरा-पूरा अनुकरण किया है। जायसी के प्रायः सभी विषयों को थोड़ा-बहुत उसमान ने भी छुआ है। शब्द और वाक्य-विन्यासों में भी अनुकरण मिलता है। चित्रावली की कहानी बिल्कुल काल्पनिक है। उसमें लेश मात्र भी कहीं पर किसी इतिहास इत्यादि का आधार नहीं लिया गया। 'जोगी ढूंढ़न खंड' में बदख्शाँ, काबुल, रूम, खुरासान, मिश्र, सिंहल द्वीप इत्यादि का भी उल्लेख कवि ने किया है। जोगियों को आपने अंग्रेजों के द्वीप में भी पहुंचाया है :

वलं दीप देखा अंगरेजा। तहाँ जाइ जेहि कठिन करेजा।।
ऊँच-नीच धन संपति हेरा। मद बराह भोजन जिन्ह केरा॥

कवि अपनी कल्पना के विषय में लिखते हैं :

कथा एक मै हिए उपजाई। कहत मीठ औ सुनत सुहाई॥

कथा इस प्रकार चलती है कि नैपाल के राजा धरन्नी धर पँवार ने पुत्र के लिये कठिन व्रत पालन करके शिव-पार्वती के प्रसाद-स्वरूप 'सुजान' नामक पुत्र पाया। सुजान एक दिन शिकार खेलने निकला तो मार्ग भूल गया। रात्रि हो गई और वह एक देव की मढ़ी में जाकर सो रहा। देव ने 'सुजान' को अपने यहाँ सुरक्षित रखा। एक दिन जब देव रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की वर्ष गाँठ का उत्सव देखने गया तो सुजान को

भी साथ लेता गया। राजकुमार को देव राजकुमारी की चित्रसारी में छोड़कर स्वयं उत्सव देखने चले गये। यहाँ राजकुमार राजकुमारी का चित्र देखकर उस पर आसक्त हो गया। राजकुमार ने तुरन्त अपना भी एक चित्र बनाया और उसे राजकुमारी के चित्र के बराबर टाँगकर स्वयं वहीं एक ओर सो रहा। देव लोग उत्सव देखकर लौटे तो उसे सोता हुआ ही उठाकर अपनी मढ़ी में ले गये। जब राजकुमार की नींद खुली तो उसे लगा कि मानो वह कोई स्वप्न देख रहा था। परन्तु जब उसकी दृष्टि अपने रंगे हुए हाथ की ओर गई तो उसने घटना की सत्यता को समझा और वह राजकुमारी के प्रेम में विह्वल हो उठा। इसी बीच राजकुमार के पिता के आदमी भी उसे खोजते हुए देव की मढ़ी में आ पहुँचे और उसे अपने साथ राजधानी को ले गये। इसके पश्चात् वह फिर अपने साथी सुबुद्धि के साथ उसी मढ़ी में गया और वहाँ एक अन्नसत्र खोल दिया।

उधर चित्रावली ने जब अपने चित्र के पास राजकुमार का चित्र देखा तो वह भी प्रेम में विह्वल हो उठी। उसने अपने नपुंसक भृत्यों को जोगियों का भेष बनाकर राजकुमार की खोज करने के लिए भेजा। राजकुमारी की माता से एक कुटीचर ने इस घटना को कह सुनाया और अवसर पाकर उस चित्र को धोकर साफ कर दिया। जब राजकुमारी को इस घटना की सूचना मिली तो वह आग बबूला हो उठी और उसने उस कुटीचर का सिर मुँडवाकर उसे निकाल दिया। राजकुमारी के भेजे हुए जोगियों में से एक सुजान के अन्नसत्र में पहुंच गया। वह राजकुमार को अपने साथ लेकर रूपनगर गया और वहाँ शिव मंदिर में उसकी राजकुमारी से भेंट हुई। इसी समय कुटीचर ने राजकुमार को अंधा बना दिया और उसे एक गुफा में डाल दिया। वहाँ उसे एक अजगर साँप ने निगल लिया परन्तु उसके अन्दर तो विरह की ज्वाला धधक रही थी जिसे अजगर सहन न कर सका और उसे उलटा उगलना पड़ा। इसी जगह एक वनमानुस ने उसे अंजन दिया जिससे उसकी ज्योति फिर लौट आई। यहाँ जंगल में वह घूम ही रहा था कि उसे एक हाथी ने पकड़ लिया। इसी समय एक पक्षिराज आया और वह हाथी को ले उड़ा। ज्योंही वह उसे लेकर उड़ा तो उसने घबराकर राजकुमार को छोड़ दिया। राजकुमार समुद्र तट पर जा गिरा। राजकुमार वहाँ से घूमता फिरता सागरगढ़ नामक नगर में पहुंचा और राजकुमारी कँवलावती की फुलवारी में विश्राम के लिए लेट गया। जब राजकुमारी वहाँ आई तो वह उसे देखकर उस पर मोहित हो गई। राजकुमारी ने उसे अपने घर पर भोजन का निमंत्रण दिया और जब वह उसके यहाँ गया तो भोजन के साथ अपना हार रखवाकर उसे चोरी के अपराध में कैद करवा लिया। इसी समय सोहिल नामक कोई राजकुमार कँवलावती पर मोहित होकर उसे विजय करने के लिए उसके पिता के राज पर चढ़ आया। इस कठिन समय में राजकुमार सुजान ने राज्य और कँवलावती की रक्षा की और सोहिल को मार भगाया। कँवलावती ने सुजान से अपने साथ विवाह का आग्रह किया तो सुजान

ने उसे स्वीकार तो कर लिया परन्तु यह प्रतिज्ञा की कि जब तक उसकी चित्रावली से भेंट नहीं हो जायेगी तब तक वह उसके साथ समागम नहीं करेगा। सुजान यहाँ से कँवलावती को साथ लेकर गिरनार की यात्रा को चल दिया।

गिरनार में चित्रावली के भेजे हुए योगी उसकी खोज में घूम रहे थे, उनमें से एक ने सुजान को पहिचान लिया। उसे पहिचानकर उन्होंने चित्रावली को सूचना पहुँचा दी। चित्रावली का पत्र लेकर एक जोगी आया और सागरगढ़ में धूनी रमाकर बैठ गया। उस योगी की सिद्धि का संदेश पाकर सुजान उसके पास गया और फिर उसी के साथ रूपनगर पहुँचा। योगी सुजान को एक जगह बिठलाकर चित्रावली को संदेश देने चला। एक दासी ने यह समाचार रानी तक पहुँचा दिया, जिसके फल स्वरूप राजकुमारी का योगी दूत मार्ग में ही कैद कर लिया गया। जब दूत न लौटा तो राजकुमार सुजान पागल होकर चित्रावली-चित्रावली पुकारने लगा। राजा ने सुजान को मारने के लिए मत-वाला हाथी छोड़ा परन्तु सुजान ने उसे मार डाला। राजा ने उस पर चढ़ाई करने का विचार किया कि इतने में सुजानगढ़ से चित्रकार सोहिल को परास्त करने वाले वीर सुजान का चित्र लेकर आ पहुँचा। जब राजा ने देखा कि वह चित्रावली का प्रेमी वही सुजान कुमार है तो उसने उसके साथ चित्रावली का विवाह कर दिया।

उधर कँवलावती सुजान के विरह में व्याकुल हो रही थी। उसने अपने हंस मिश्र को दूत स्वरूप सुजान के पास भेजा और उन्होंने सुजान को भ्रमर की अन्योक्ति द्वारा कँवलावती की याद दिलाई।

सुजान को कँवलावती का स्मरण हो आया और वह चित्रावली को साथ लेकर अपने देश की ओर रवाना हुआ। मार्ग से उसने कँवलावती को भी अपने साथ ले लिया। रास्ते में समुद्री तूफान इत्यादि आये और अंत में वह दोनों रानियों को लेकर नैपाल पहुँच गया। वहाँ फिर उसने काफी दिन तक राज्य किया।

उसमान कवि ने जायसी का अनुकरण किया है, इसका संकेत हम पीछे दे चुके हैं। जायसी की ही भाँति आपने काव्य में सात-सात चौपाई के पश्चात् एक दोहा रखा है। चित्रावली की कहानी काल्पनिक ही है और अपने समय की प्रचलित कहानियों के जैसी है। इसमें आध्यात्मिक पुट स्थान-स्थान पर कवि ने दी है। चित्रावली के प्राप्त न कर लेने तक कँवलावती के साथ समागम न करने की बात इसीलिए कथा में ऊपर आई है। जायसी की ही भाँति आपने भी सागर, पर्वत, जंगल, सरोवर, यात्रा दान-महिमा, तूफान इत्यादि का वर्णन किया है। पद्मावत की तरह चित्रावली भी सरोवर में छुप जाती है और उसकी सखियाँ उसे नहीं खोज पातीं इसमें आध्यात्मिक विचार धारा ही है :

सरवर ढूँढि सबै पचि रहीं। चित्रिन खोज न पावा कहीं॥
निकसी तरि भईं बैरागी। धरे ध्यान सुख बिनवै लागीं॥
गुपुत तोहि पावहिं का जानी। परगट महँ जो रहै छपानी॥

चतुरानन पढ़ि चारौ बेदू । रहा खोजि पै पाव न भेदू ।।
हम अंधी जेहि आप न सूझा । भेद तुम्हार कहाँ लौं बूझा ।।
कौन सो ठाऊँ जहाँ तुम नाहीं । हम चख जोति न देखहिं काही ।।
खोज तुम्हार सो, जेहि दिखराहु पंथ । कहा होइ जोगी भए, और बहु पढ़े ग्रन्थ
हिंदी-साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ११०

षटऋतु वर्णन देखिए :

ऋतु बसंत नौतन बन फूला । जहँ-तहँ भौंर कुसुम रंग मूला ।
आहि कहँ सो भँवर हमारा । जेहि बिनु बसत बसंत उजारा ।।
रात बरन पुनि देखि न जाई । मानहुँ दवा दहूँ रिसि लाई ।।
रति-पति दुरद ऋतुयतीं बली । कानन देह आइ दल भली ।।

प्रेम काव्य-लेखकों ने विरह को अपने काव्यों में विशेष स्थान दिया है, क्योंकि आत्मा की शुद्धि और तपस्या की परख विरह में ही होती है। इसीलिए वे ऐसी परिस्थित्ति पैदा करते हैं कि जिससे विरह अनिवार्य हो उठे। अधिकांश लेखकों ने अपने नायकों की दो-दो पंक्तियों का उल्लेख किया है। इनमें उनकी एक साँसारिक पत्नी के रूप में आती है और दूसरी आध्यात्मिक पत्नी अर्थात् ब्रह्म के रूप में। उसी के सौंदर्य में वे ईश्वर की झलक देखते हैं। जिस प्रकार महाकवि जायसी ने पद्मावती के साथ नागमती का उल्लेख किया है ठीक उसी प्रकार उसमान कवि ने चित्रावली के साथ कँवलावती का समावेश करके अपने ग्रन्थ के आध्यात्मिक पहलू को निखारा है।

शेख नबी : शेख नबी जिला जौनपुर के रहने वाले थे। यह संवत् १५७६ में जहाँगीर के समय में वर्तमान थे। यही इनका रचना-काल भी माना जाता है। आपका लिखा ग्रन्थ 'ज्ञान-दीप' है। यह आख्यान-काव्य है, जिसमें राजा ज्ञानदीप और रानी देवजानी की कथा वर्णित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस रचना को प्रेमाश्रयी धारा की अंतिम रचना माना है। उनका मत है कि इसके पश्चात् जो इस प्रकार की रचनाएँ लिखी गई और उपलब्ध हैं वे केवल शैली को लेकर ही इस धारा में रखी जा सकती हैं, विचार और भावना को लेकर नहीं। यह प्रणाली सभी विचारधाराओं में मिलती है। संत-काव्य, राम-काव्य और कृष्ण-काव्य में भी इसी प्रकार बाद में केवल शैली के आधार पर रचनाएँ आती चली गई हैं। कवियों ने मान्यता के नाते चाहे उन सिद्धांतों का प्रतिपादन नहीं किया वरन् विषय, शैली, भाषा, अलंकार, छंद-योजना इत्यादि के क्षेत्र में उन्हीं का अनुसरण करते चले गये हैं।

शेख नबी के पश्चात् आने वाले कवियों का भी यहाँ हम संक्षेप में उल्लेख करते हैं।

कासिमशाह : कासिमशाह जिला बाराबंकी में दरियाबाद के रहने वाले थे। इनका वतमान रहने का समय संवत् १७८८ माना जाता है। इनकी 'हंस-जवाहिर'

नामक कहानी मिलती है। इस कहानी का नायक राजाहंस और नायिका जवाहिर है। इस रचना को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निम्न कोटि का माना है। उनका कथन है कि कवि ने जगह-जगह पर जायसी की पदावली ज्यों-की-त्यों भी उठा ली है परन्तु इसमें प्रौढ़ता नहीं आई है। शाहेवक्त का उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है :

मुहमदसाह दिली सुलतानू। का मन गुन ओहि को बखानू॥
छाजै पाट छत्र सिरताजू। नावहिं सीस जगत के राजू॥
रूपवंत दरसन मुँहराता। भागवंत ओहि कीन्ह बिधाता॥
दरबवंत, धरम महँ पूरा। ज्ञानवंत खड्ग मँह सूरा॥

—इतिहास रामचन्द्र शुक्ल—पृष्ठ १११

उनके द्वारा दिया गया उनका अपना परिचय भी देखिए :

दरियाबाद माँझ मम ठाऊँ। अमातुल्ला पिता कर नाउँ॥
तहवाँ मोहिं जनम बिधि दीन्हा। कासिम नावँ जाति कर हीना॥
तेहूँ बीच बिधि कीन कमीना। ऊँच सभा बैठे चित दीना॥
ऊँच संग ऊँच मन भावा। तब भा उँच ज्ञान-बुधि पावा॥
ऊँचा पंथ प्रेम का होई। तेहि महँ ऊँच भए सब कोई॥

कवि की कथा का सार भी देखिए :

कथा जो एक गुपुत महँ रहा। सो परगट उघारि मैं कहा॥
हंस जवाहिर बिधि औतारा। निरमल रूप सो दई सँवारा॥
बलख नगर बुरहान सुलतानू। तेहि घर हंस भये जस भानू॥
आलमशाह चीन-पति भारी। तेहि घर जनमी जवाहिर बारी॥
तेहि कारन वह भएउ बियोगी। गएउ सो छांड़ि देस होइ जोगी॥
अंत जवाहिर हंस घर आनी। सो जग महं यह गयउ बखानी॥
सो सुनि ज्ञान-कथा मैं कीन्हा। लिखेउँ सो प्रेम, रहै जग चीन्हा॥

नूरमुहम्मद : नूरमुहम्मद 'सबरहद' नामक स्थान के रहने वाले थे। यह स्थान जौनपुर जिले में जौनपुर-आजमगढ़ की सड़क पर स्थित है। यह दिल्लीशाह मुहम्मदशाह के जमाने में वर्तमान थे। बाद में यह अपने गाँव से अपनी सुसराल जिला आजमगढ़ में भादों नामक ग्राम में चले गये थे। इनके श्वसुर शमसुद्दीन ने अपना कोई वारिस न होने के कारण इन्हें वहीं पर बुला लिया था। नूरमुहम्मद के दो पुत्र हुए, गुलामहसनैन और नसीरुद्दीन।

नूरमुहम्मद फ़ारसी के विद्वान थे। इन्हें हिन्दी भाषा और काव्य का भी अच्छा ज्ञान था। फारसी में आपने एक दीवान और अन्य कई पुस्तकों की रचना की है। संवत् १८०१ में आपने 'इन्द्रावती' नामक सुन्दर आख्यान-काव्य की रचना की। इसमें

कालिंजर के राजकुमार और आगमपुर की राजकुमारी इन्द्रावती की प्रेम कहानी वर्णित है। काव्य-प्रणाली के आधार पर आपने भी शाहेवक्त मुहम्मदशाह की प्रशंसा ही की है :

करौं मुहम्मद शाह बखानू। है सूरज देहली सुलतानू ॥
धरम पंथ जग बीच चलावा। निबर न सबरे सो दुःख पावा ॥
बहुतै सलातीन जग केरे। आइ सहास बने है चेरे ॥
सब काहू पर धरई । धरम सहित सुलतानी करई ॥

कहानी की भूमिका भी देखिए :

मन दग सो इक राति मझारा। सूझि परा मोहि सब संसारा ॥
देखेउँ एक नीक फुलवारी। देखेउँ तहाँ पुरुष औ नारी ॥
दोउ मुख लोभा बरनि न जाई। चंद सुरुज उतरे भुइँ आई ॥
तपी एक देखेउँ तेहि ठाऊँ। पूछेउँ तासौं तिन्ह कर नाऊँ ॥
कहा अहै राजा औ रानी। इन्द्रावति औ कुँवर गियानी ॥
आगमपुर इन्द्रावती कुँअर कलिंजर राय।
प्रेम हुँते दोउन्ह कह दीन्हा अलख मिलाय ॥

नूर मुहम्मद ने दोहे और चौपाइयों के क्रम में जायसी का अनुसरण न करके उनके पूर्ववर्ती कवियों की भाँति पाँच-पाँच चौपाइयों के पश्चात् दोहा रखा है। सूफी-पद्धति का यह अंतिम ग्रन्थ है। 'अनुराग-बाँसुरी' इनका एक दूसरा ग्रंथ भी फारसी-लिपि में लिखा हुआ मिलता है। इस ग्रंथ की भाषा संस्कृत-गर्भित है और अन्य किसी भी सूफी-ग्रंथ की भाषा से अधिक प्रांजल है। यहाँ हम शुक्ल जी के इतिहास से एक उद्धरण देते हैं जिसमें उन्होंने लिखा है कि किस प्रकार मुसलमान हिन्दी को त्यागने और फारसी को अपनाने की प्रवृत्ति अपनाने लगे थे :

"इन्द्रावती की रचना करने पर शायद नूरमुहम्मद को समय-समय पर यह उपालम्भ सुनने को मिलता था कि 'तुम मुसलमान होकर हिन्दी-भाषा में रचना करने क्यों गये?' इसी से 'अनुराग-बाँसुरी' के आरम्भ में उन्हें यह सफाई देने की जरूरत पड़ी :

जानत है यह सिरजनहारा। जो किछु है मन मरम हमारा ॥
हिन्दू मग पर पाँव न राखेउँ। का जौ बहुतै हिन्दी भाखेउँ ॥
मन इसलाम मिरिकलैं माँजेउँ। दीन जेंवरी करकस भाँजेउँ ।
जहँ रसूल अल्लाह पियारा। उम्मत को मुक्तावन हारा ॥
तहाँ दूसरो कैसे भावै। जच्छ असुर सुर काज न आवै ॥

इसका तात्पर्य यह है कि संवत् १८०० तक आते-आते मुसलमान हिन्दी से

किनारा खींचने लग थे। हिन्दी हिन्दुओं के लिए छोड़ कर अपने लिखने पढ़ने की भाषा वे विदेशी अर्थात् फारसी ही रखना चाहते थे। जिसे उर्दू कहते हैं उसका उस समय तक साहित्य में कोई स्थान न था, इसका स्पष्ट आभास नूरमुहम्मद के इस कथन से मिलता है :

कामयाब कह कौन जगावा। फिर हिन्दी भाखै पर आवा॥
छाँड़ि फारसी कंद नवातैं। अरुझाना हिंदी रस-बातैं॥

'अनुराग बाँसुरी' संवत् १८२१ में लिखी गई थी। इसमें शरीर, जीवात्मा, मनोवृत्तियों इत्यादि का कवि ने स्पष्टीकरण किया है। अध्यवसित रूपक (Allegory) के रूप में कवि ने इसकी रचना की है। इसकी सारी कहानी और सारे पात्र रूपक के रूप में ही व्यंजित होते हैं। इसकी भाषा में कहीं-कहीं व्रज-भाषा की भी झलक आ जाती है। भाषा, जैसा हम पहिले कह चुके हैं, इसकी अन्य सभी सूफी-ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक सुसंस्कृत है। इनकी रचना का एक नमूना हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास से लेकर यहाँ पेश करते हैं :

नगर एक मूरतिपुर नाऊँ। राजा जीव रहै तेहि ठाऊँ॥
का बरनौं वह नगर सुहावन। नगर सुहावन सब मन भावन॥
इहै सरीर सुहावन मूरतिपूर।
इहै जीव राजा, जिव जाहु न दूर॥
तनुज एक राजा के रहा। अंतः करन नाम सब कहा॥
सौम्यशील सुकुमार सयाना। सो सावित्री स्वांत समाना॥
सरल सरनि जौं सो पग धरै। नगर लोग सूधै पग परै॥
वक्र पंथ जो राखै पाउँ। वहै अध्व सब होइ बटाऊ॥
रहे संघाती ताके पत्तन ठाँव।
एक संकल्प, विकल्प सो दूसर नाँव॥
बुद्धि चित्त दुइ सखा सरेखे। जगत बीच गुन अवगुन देखे॥
अंतः करन सदन एक रानी। महा मोहनी नाम सयानी॥
बरनि न पारौं सुंदरताई। सकल सुन्दरी देखि लजाई॥
सर्व मंगला देखि असीसै। चाहे लोचन मध्य बईसै॥
कुंतल झारत फाँदा डारै। चख चितवन सों चपला मारै॥
अपने मंजु रूप वह दारा। रूप गर्विता जगत मँझारा॥
प्रीतम प्रेम पाइ वह नारी। प्रेम गर्विता भई पियारी॥
सदा न रूप रहत है अंत नसाइ।
प्रेम रूप के नासहि तें घटि जाइ॥

इसके पश्चात् एक प्रकार से प्रेम-काव्य की धारा समाप्त सी ही हो जाती है। ऊपर हमने इस धारा के प्रमुख कवियों तथा उनकी रचनाओं पर प्रकाश डाला है। नीचे हम उन रचनाओं का संक्षेप में उल्लेख करते हैं जो प्रेम कथात्मक आख्यान हैं। इनमें प्रेम का मनोविज्ञान मिलता है।

माधवानल कामकलन्दा : माधवानल और कामकलन्दा की प्रेम कथा को तीन कवियों ने कहा है। इन कवियों के नाम कुशल लाभ, आलम और गणपति हैं। इनकी रचनाओं के नाम भी क्रमशः 'माधवानल कामकलन्दा चरित', 'माधवानल भाषा बन्ध कवि आलम कृत' और 'माधवानल प्रबन्ध दोग्धबन्ध कवि गणपति कृत' हैं।

कुतुब सतक : इसमें दिल्ली के सुलतान फ़िरोजशाह के शहज़ादे कुतुब की एक मुसलमान किशोरी साहिबा से इश्क की कहानी वर्णित है। दोनों का विवाह हो जाता है। यह कथा तुकान्त गद्य में वर्णित है। लेखक के नाम का पता नहीं।

रसरतन : इसमें सूरसैन की कथा है। प्रेमाख्यान शैली में यह कथा लिखी गई है। नीति, शृंगार और काव्य के अंगों का इसमें निरूपण मिलता है। इसकी रचना पुहकर कवि ने की है। ये मैनपुरी जिले के प्रतापपुर नामक ग्राम के कायस्थ जाति के रत्न थे। इनका रचना-काल जहाँगीर के शासन-काल में था।

पंच सहेली कवि छीलह री कही : इसमें पाँच स्त्रियाँ अपने प्रियतम के विरह की गाथा कवि से कहती हैं। हृदय के करुण आवेग का इसमें कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। कुछ दिन पश्चात् कवि की उनसे फिर भेंट होती है तो वे प्रसन्न मिलती हैं। क्योंकि उनके पति लौट आते हैं। यह केवल ६५ दोहों की पुस्तिका है।

सदैवछ सावलिंगा रा दूहा: इसमें सालिवाहन राजा के पुत्र सदैवछ और उनके मंत्री की पुत्री की प्रेम-गाथा वर्णित है।

कनक मंजरी : इसमें रत्नपुर के सेठ की स्त्री कनकमंजरी से वहाँ के राजकुमार की प्रेम-याचना का वर्णन है। इस ग्रंथ के लेखक काशीराम थे। काशीराम ने यह कथा राजकुमार लक्ष्मीचन्द्र के लिए लिखी थी। इनका रचनाकाल संवत् १६२० के लगभग है। यह औरंगजेब का शासनकाल था और काशीराम जी औरंगजेब के सूबेदार निजामतखाँ के आश्रित कवि थे।

मदन सतक : इसमें नीति सम्बन्धी ११३ दोहे लिखे गये हैं। इन दोहों में मदनकुमार और चम्पकमाल की प्रेम-कथा वर्णित है।

ढोला मारू रा दूहा : यह रचना सोलहवीं शताब्दी की है। इसके लेखक कुशललाभ हैं। इसमें ढोला और मारू की प्रेम-कथा वर्णित है। 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' भाग १ में 'ढोलामारू री चौपाई' की तीन प्रतियाँ मिली हैं।

पद्मावती : इसमें पद्मावती की प्रेम-कहानी वर्णित है। यह औरंगजेब के शासन-काल में लिखी गई।

नलदमन : इसमें नल दमयन्ती की कथा वर्णित है। इसकी रचना सूरदास ने की है। पर यह सूरदास पुष्टिमार्गीय सूरदास से भिन्न हैं।

इसी प्रकार के अन्य दस बीस ग्रन्थ और भी मिलते हैं जिनका उल्लेख करना विद्यार्थियों के लिए विशेष लाभकर नहीं है, इसी लिए छोड़ दे रहे हैं। इन पद्यात्मक काव्यों के अतिरिक्त गद्यात्मक ग्रन्थ भी मिलते हैं। गद्यात्मक ग्रन्थों में बात-संग्रह, मोमल री बात, रावल लखणसेनरी बात, राशौ खेतैरी बात, देवरै नायक दे री बात, वींझरै अहीर री बात, अमादे भटियाणी री वात, सोहणी री बात, पँमै घोरान्धार री बात इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सारनिरूपण

प्रेम-काव्य-परम्परा, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, महाकवि जायसी से पहिले से चली आ रही थी। परन्तु जायसी के पद्मावत की समानता में इस धारा का अन्य कोई ग्रन्थ नहीं आता। इस धारा में निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन प्रेम-पद्धति द्वारा किया गया है। आत्मा में परमात्मा की झांकी दिखलाई गई है। ईश्वर को नारी के रूप में प्रेम कवियों ने देखा है और उसके सौंदर्य को लौकिक प्रेम-गाथाओं में उतारने का प्रयास किया है।

इस धारा के प्रायः सभी कवि सूफ़ी फ़कीर थे जो पूर्ण रूप से मुसलमान थे; परन्तु मानवता के नाते वे हिन्दू और मुसलमान में भेद नहीं समझते थे। इसी लिए इन लोगों ने आध्यात्मिक तत्त्वों के रूप में मुसलमानी मान्यताओं को ग्रहण करते हुए भी अपने काव्य-ग्रन्थों के नायक और नायिका के रूप में हिन्दू पात्रों को ही चुना है। इस प्रकार इन कवियों ने हिन्दू तथा मुसलमान-जीवन को पास-पास लाने तथा दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है।

प्रारम्भ में इस धारा के जितने भी ग्रन्थ लिखे गये वे सब केवल साहित्य-रचना के लिए नहीं लिखे गये, बल्कि उनके द्वारा अपनी मान्यताओं का प्रतिपादन करना उनके लेखकों का मुख्य लक्ष्य रहा है। यही बात हम संत-धारा, कृष्ण-भक्ति-धारा, राम-भक्ति-धारा इत्यादि में भी पाते हैं। परन्तु कुछ दिन पश्चात् ही इसे साहित्यिक प्रणाली के रूप में अपना लिया गया और कवियों ने उसे शैली मान कर काव्य-रचना की। इस शैली की धारा में गद्य तथा पद्य दोनों ही प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं।

संक्षिप्त

१. निर्गुण भक्ति की दो ज्ञान मार्गीय तथा प्रेम मार्गीय शाखायें बनीं।

२. जायसी प्रेम मार्गीय शाखा के प्रमुख कवि है और उनका पद्मावत

प्रेम-काव्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ। परन्तु यह इस धारा के प्रवर्तक नहीं, एक सबल समर्थक हैं।

३, इस धारा को हिन्दी-साहित्य में अपनाया गया और बहुत से कवियों ने इसे शैली के रूप थे अपनाकर रचनाएँ कीं।

४. इसमे पद्यात्मक तथा गद्यात्मक, दोनों ही प्रकार की रचनाएँ लिखी गईं।